
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गा साह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no. 891.07
Book no. K31 M.
Reg no. 2693

महाकवि साँड़

(पढ़िये और हँसिये)

रचयिता—

हास्यरसावतार—पण्डित कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच'
एम० ए०; काव्यतीर्थ.
प्रधान मन्त्री—
काशी साहित्य मण्डल तथा 'दीन' सुकविमण्डल
प्रधान आचार्य—हरिमंगल-हिन्दी-महाविद्यालय.

विहंगमत्वं न श्लाघ्यं कस्य 'चोंच' महाकवेः ।
निष्कुष्णानि दधिपोऽपि, यो हृष्ट्वैवाभिगं पिपात् ।
वैलासिकत्वं न श्लाघ्यं, कस्य 'चोंच' महाकवेः ।
यो हासयन् रोदयति, शोषयन् परिरक्षति ॥

—प्रोफेसर केशवप्रसाद मिश्र

प्रकाशक—

चौधरी एजेन्सी

द्वितीय संस्करण } { मूल्य ॥)

प्रकाशक —

चौधरी एन्ड सन्स,

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

बनारस सिटी।

मुद्रक—

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस,

जतनबर, बनारस-१.

महाकवि साँड़

भगवान् सूर्य्य को उदित हुए अभी दो घण्टे भी न बीते होंगे, मैं आराम से बिछौने पर पड़ा सो रहा था, कि इतने में बाहर से किसी ने बाँग देना आरम्भ किया—"कवि जी, कवि जी!" दस बारह हाँक तक तो मैंने सुना ही नहीं, किन्तु तेरहवीं बार पुकारे जाने पर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि कोई मुझे पुकार रहा है। मैंने डपट कर झट उत्तर दिया—"अच्छा, अच्छा खड़ा रह!" और कलवारू को अवाज दी 'अरे कलवरुआ, मालकिन से पैसा लेकर जा, गली में खोमचे वाला कब से पुकार रहा है, देख पाव भर जलेबी ले लेना, और कुछ दालमोट दो चार पैसे का, जा और पाखाने में पानी भरता जा और—

मैंने वाक्य पूरा भी नहीं किया था, कि कलवरुआ की मालकिन पंख फड़फड़ाती, दाँत कटकटाती, आँख मटकाती, हाथ चमकाती मेरे समक्ष आ ही तो गयीं और बिना किसी भूमिका

था प्राक्कथन के, मुझे उसी तरह फटकारने लगीं, जैसे कोई अंग्रेज कलेक्टर किसी हिन्दुस्तानी रईस को फटकारता है! बेचारे कब से बाहर खड़े पुकार रहे हैं।"

मैंने भी 'एक चुप सौ को हरावै' के अनुसार चुप्पी साध ली।

हाँ, तो मलकिन जी कहती ही गयीं "वे बेचारे घण्टे भर से चिल्ला रहे हैं। तुम्हें तो नींद से ही फुर्सत नहीं है।"

"मुझे भी ताव आ ही गया। मैंने कहा—घण्टे से चिल्ला रहे हैं! आखिर पुछवा तो लिया होता कि कौन हैं वे हजरत?"

मालकिन बोलीं—अरे वही तो हैं! बैठका में बैठे हैं! क्या नाम है उनका! बड़ी बड़ी मूंछे हैं। सुन्दर आँखें हैं। लम्बे से, गोरे से हैं जो!"

अब मालूम हुआ कि सवेरे ही सवेरे उपद्रव मचाने वाले महाशय मेरे मित्र स्वामी भयंकरानन्द शास्त्री थे। मैं मन ही मन उनके सात पुरखों का श्राद्ध करता नीचे उतरा! शास्त्री जी आये थे मुझे एक कवि-सम्मेलन में ले चलने के लिये। बोले—भाई! चलोगे नहीं, महाकवि साँड़ की जयन्ती में। मैंने पूछा—"महाकवि साँड़ कौन?" शास्त्री जी बोले—अरे यार, महाकवि "साँड़" खास इसी बनारस में आज कई वर्ष पूर्व होते भये। उन्हीं की जयन्ती है।

मैंने पिण्ड छुड़ाने के लिये कहा—अच्छा यार, जिस दिन होगी, चला चलूँगा। शास्त्री जी तड़प उठे!—अरे, आज ही तो है वह जयन्ती जनाब १० बजे से। देखियेगा क्या साहित्यिक

शद रहेगा। सैकड़ों विद्वान् रहेंगे। तुम्हें लिवाने ही तो आया हूँ।

मैंने सिर खुजलाते हुए कहा—अच्छा गुरू! चला चलूँगा! मगर 'प्रेसाइड' कौन करेगा?

"अब तो शास्त्री जी ने ऐसी विनीत Your most obedient servant की मुद्रा बनाकर कहा—यार 'प्रेसाइड' तो सभों ने मुभी से करने के लिये कहा है!"

अब रंग लाई गिलहरी! मैंने शास्त्री जी को खूब आड़े हाथों लिया। खैर, हम दोनों साहित्य दिग्गज, गजगामिनियों का मान-मर्दन करते हुए, सभा के लिये चल पड़े।

साहित्य-मन्दिर का विशाल हॉल दर्शकों और श्रोताओं से ठसाठस भरा हुआ था। सभा की सूचना १० बजे की थी, किन्तु हम लोग ८ बजे ही पहुँच गये। सभा का कार्य ठीक बारह बजे से आरंभ हुआ। अन्य सब कार्य होने के अनन्तर शास्त्री जी हास्य-गर्जन और ताली-मर्दन के बीच अपना भीषण भाषण देने के लिये लपक कर खड़े हुए!

शास्त्री जी बोले:—

भाइयो और भौजाइयो! अब आपको इस विषय में इस मात्र भी सन्देह न रह गया होगा कि आपलोग प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद महाकवि 'साँड़' की पवित्र जयन्ती मनाने को ही यहाँ पधारे हुए हैं। ऐसे अवसर के लिए आपकी इस-सभा ने मुझे अपना 'पति' चुनकर अपनी जिस अलौकिक गुणग्राहकता का किलकिलायमान परिचय दिया है, उसे हिन्दी साहित्य के भावी

इतिहासकार ७२ पौण्ड के कागज पर स्वर्णाक्षरों या रेशियाः के वर्णों में लिखेंगे। मैं बड़ा एकान्त-सेवी और विज्ञापन कलानभिज्ञ पुराना साहित्यिक हूँ, किन्तु आपलोगों की गृध्र-दृष्टि मुझपर पड़ ही गयी। मुझे सभापति का पद देकर आपने अपना और अपनी संस्था का जो गौरव बढ़ाया है, वह आप लोगों की योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है। ईश्वर को धन्य-वाद देता हूँ और उससे यह प्रार्थना करता हूँ कि वह इसी भाँति आपके बुद्धि-वैभव का विकास करता रहे। किन्तु आप लोगों के कारण ही मुझे कल दिनभर उपवास भी करना पड़ा था, इसलिये अब मैं इसी टेबुल पर लेटकर बहुत मन्द मन्द कलकल ध्वनि में ही भाषण करूँगा। यद्यपि 'नाइन्थ क्लास' में मुझे अनेक बार बेञ्च पर खड़े होकर नीचे बैठे हुए छात्रों के अवनत मस्तकों पर गौरवपूर्ण दृष्टि डालने का अवसर मिल चुका है, तथापि इस समय मैं उपवास और परिश्रम जन्य क्लान्ति की थकावट से चूर हो रहा हूँ। आशा है कि आप मुझे लेटे लेटे ही यह आनन्द उठाने देंगे।

कोई हर्ज नहीं; जब आप पूछते ही हैं तो सुन ही लीजिये कि मैंने कल कैसे उपवास किया!

कल दोपहर को घर लौटने पर, सहसा मेरी दृष्टि रसोई-घर पर पड़ी, तो क्या देखता हूँ कि वहाँ मक्खियों ने हड़ताल कर दी है, और वर्तनादि पड़े ही निर्मल स्वरूप में पड़े हुए, बहुत दिनों के 'परिश्रम की थकावट' मिटा रहे हैं।

श्रीमती जी भी नहीं दिखायी पड़ीं। सन्देह हुआ! नौकर से पूछा तो मालूम हुआ कि ओढ़ना ओढ़े पड़ी हुई हैं। मैंने सोचा शायद सिर में दर्द हो। तुरन्त अमृतांजन लेकर पहुँचा और सिर पर रगड़ने लगा।

कहते हैं कि होम करते हाथ जलता है। श्रीमती जी तो तड़प कर गुस्से से फुलझरी हो गयीं।

"रहने दो। मैं मर नहीं रही हूँ। जाओ अपनी उसी जयन्ती बीबी का सिर दबाओ!"

मैं बड़ा घबड़ाया! अभी सबेरे तो भली चंगी थीं; बीच में ही इन्हें कुछ लग तो नहीं गया। और इन्होंने तो इतना कह कर जो चादर खींची, कि फिर खोलने का नाम नहीं। मैंने उदास होकर चारों ओर दृष्टि दौड़ायी तो सिरहाने टेबुल के कोने पर टाइप की हुई एक लाल चिट्ठी दिखलायी पड़ी, जिसे मैंने पढ़ा तो, ये वाक्य लिखे दिखलायी पड़े—

श्रीमान् शास्त्री जी!

"पूर्व सूचनानुसार कल की तारीख ही निश्चित की गयी है। महाकवि सौड़ की 'जयन्ती' के लिये आपसा सभा*पति मिलना कठिन है। आप युवक हैं, योग्य हैं, सुन्दर हैं, सुकवि हैं। आप को पाकर सभा धन्य और सफल हो जायगी। हम लोग विशेष

---

* टाइप करनेवाले की भूल से सभापति के स्थान पर सभापत्नि छप गया था।

धूम धाम नहीं कर रहे हैं, केवल कुछ गाने बजाने और कविता पाठ का ही प्रोग्राम है।"

अब आप ही सोचिये; कि मैंने कुछ दिन पूर्व अपनी श्रीमती जी से साफ साफ कह दिया था कि 'यदि तुम इसी प्रकार मैके जाया करोगी, तो मैं अवश्य ही एक दूसरा विवाह कर लूँगा।" उसके चार ही दिन बाद आप लोगों का यह पत्र उसके सुसंस्कृत दिमाग़ को बहकाने के लिये काफी था या नहीं !

हाँ, तो महाकवि साँड़ की ओर आइये ! ये महाशय किस सन् या संवत् में जन्मे थे, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है, पर माननीय मिश्र-बन्धुओं ने सिर का पसीना एड़ी तक करके इस बात का पता लगाया है कि ये महाकवि विक्रम की १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के तृतीय चरण में उत्पन्न हुए थे। इनका जन्म बिसवाँ, सीतापुर में हुआ और ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनकी कविता पर देव की छाप है। ये सेनापति की कोटि के कवि थे।

ऊपर की बातें कहाँ तक सच हैं, यह आप जानें। हाँ, इतना पण्डित केदार नाथ पाठक से मुझे मालूम हुआ है कि वे काशी में ही रहते थे, और प्रति दिन सवेरे शाम गैबी पर भाँग छानने आया करते थे।

महाकवि 'साँड़' हरएक प्रकार के छन्द लिखते थे, किन्तु दोहा लिखने में उन्हें कमाल हासिल था ! वे कहा करते थे—

मूरख जिसे मजाक में, कहैं भयानक भाँड़।
आया कविता-क्षेत्र में, वह साहित्यिक साँड़॥

आप आश्चर्य करेंगे, उनके इसी एक दोहे का अर्थ एक निराले टीकाकार ने ७५ ढंग से किया था। और इसी दोहे पर उस समय के स्वनामधन्य स्वयम्भू समालोचकों ने उन्हें 'बिहारी चण्डा' की उपाधि दे डाली थी।

अब मैं महाकवि साँड़ के सम्बन्ध की दो चार सची घटनाएँ सुनाता हूँ। एकबार कानपुर के एक प्रसिद्ध कवि ने उनके पास यह शिकायत भरा पत्र लिख भेजा कि अपनी पत्नी के मारे उनकी नाक में दम है। वह उन्हें भाँग नहीं छानने दिया करती और खुद भाँग पीसकर पिलाने की कौन कहे, उन्हें स्वयं भी घोंटने नहीं देती। इसपर 'साँड़' जी ने उनके पास यह आदर्श छन्द लिखकर भेजा था।

"जाको प्रिय न भाँग को लोटा।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि आपनो ढोटा।
घूमौ सकल तीर्थ क्षेत्रन में, पढ़ै पहिर लिगोटा।
पर विजया बिन मिलै न कछु फल, यह हिसाब है मोटा।
जो न भाँग छानै निशिवासर, सो नर कपटी खोटा।
ते नर धन्य, बसै जिनके कर, सुन्दर कुण्डी सोटा।
बनहु सुखी सिलबट्टा कै करि, कबहुँ न होवै टोटा।
नाहिं तो दीन हीन कुकुर सम, घर घर चाटहु चोटा।

इसी पद के आधार पर कुछ लोगों ने गोस्वामी तुलसी

दास और मीरा के पत्र-व्यवहार की झूठी कल्पना कर रक्खी है। संसार में जितने महाकवि हुए हैं, सभी भाँग छानते थे और अपनी कविता के निर्माण के पूर्व एक 'गोला' अवश्य ही चढ़ा लिया करते थे। उनकी रचनाओं में जो शिथिल अंश पाये जाते हैं, वे सब बिना भाँग छाने ही लिखे गये हैं।

महाकवि साँड़ अपनी पत्नी को साँड़नी कह कर पुकारते थे। उनके घर में एक अहिरिन मजदूरनी रहती थी। उसे वे सरदारिन कह कर पुकारा करते थे। एकबार एक पत्र के सम्पादक ने उनसे 'वसन्तांक' के लिये एक कविता माँगी थी, इसपर आपने यह कविता उस अंक के लिये भेजी थी जिसे सम्पादक जी ने टाइटिल पेज पर छापकर अपनी गुण-ग्राहकता का अपूर्व परिचय दिया था।

कविता यह थी—

कोठन में, कूँअन में, कोल्हू, कलवरिया में,
कोने, काँजी हौसन में कल किलकन्त है।
कहै कवि साँड़, साँड़नी में, सरदारिन में,
सेव में, समोसा में, सरासर सगन्त है।
देह में, दिमाग में, दिवाल में, दराजन में,
दाँतन में, दतुवन में, दीपत दिगन्त है।
बैठक में, बाँध में, बिछौना में, बजारन में,
बाहर बरामदा में बगरयो बसन्त है!!

महाकवि पद्माकर ने भी इसी ढंग का एक कवित्त लिखा है जो साँड़ जी की कविता की ही हूबहू नकल है।

महाकवि साँड़ ने कुछ छायावादी रचनाएँ भी की हैं। कुछ लोगों की यह भ्रमात्मक धारणा है कि हिन्दी कविता में निराला, पन्त और 'प्रसाद' आदि कविवरों ने छायावादी काव्य की सृष्टि की है! पर मेरा यह विचार है कि यह उनका शुद्ध भ्रम है। वास्तव में छायावादी कविता के जनक महाकवि साँड़ ही थे! उनकी छायावादी रचनाओं के कुछ अनुवाद प्रोफेसर जात्या भाई पात्याभाई ने गुजराती में भी किये हैं। मूल कविताएँ तो अत्यधिक सुन्दर हैं। मैं उनकी "गगन के प्रति" शीर्षक कविता, सुनाता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये—

"ओ आकाश!
तुममें ही!
व्यावर्तन की वल्लरियों का दिव्य लोक उद्दाम।
किधर से!
अतुलित अपलक अभिहित अद्भुत।
सौन्दर्य-राशि-सौकर्य-ललित
तू कटु कर्दम-कम्बोज-कलित
अभिनव रव!
सुरभित मंजुल मलयज समीर
उपहासास्पद!

आक्रोश अरिन्दम अन्तराल
निःसरण-मार्ग के पथ प्रधान
तू महा मदिर है मण्डितांग
आया था !
उत्तुंग भंगि अंकित सा विह्वल प्रतिपक्ष
अरे चुप रह !!"

उनकी छायावादी कविताओं के सम्पादन की भूमिका में समालोचक-सम्राट् आचार्य पं० रामचन्द्र जी शुक्ल 'छायावाद' क्या है ? यों बतलाते हैं—

मानव-जीवन के काव्य-गत मूर्ताधार के विश्लेषण का सामञ्जस्य अपने तारतम्य की प्रकृष्ट कलात्मक भावना-सत्ता की पारम्परिकता के उद्दीपन से जब अन्तर्हित होकर प्रकृत्यात्मक व्यञ्जना का निर्विकल्प अभ्युष्ट आश्रय लेता है, उस समय उसकी 'छायावाद' संज्ञा होती है !

महाकवि "साँड़" ग्राम-गीतों के बड़े प्रेमी थे, और स्वयं भी कुछ ग्राम-गीत लिखा करते थे। एक सम्पादक महोदय ने उनके गीतों का अच्छा संग्रह प्रकाशित किया है। सुना है कि इस समय वे उसकी टीका भी कर रहे हैं जिसे प्रकाशित कर वे किसी कालेज के कोर्स में भी कराने वाले हैं। देखिये उनमें से एक गीत मैं आप लोगों को सुनाता हूँ। महाकवि साँड़ कहते हैं—

प्रभो ! जो हम होइत, दसरथ घर कुक्कुर।
चारो भइया खातन पूड़ी, हम ताकित टुक्कुर टुक्कुर॥
कबहूँ न छूइत माँस दाँत से, बनत रहित बिलरौटा।
कौसल्या जी के हाथन से ले भागित कजरौटा॥

हाँ, भले याद आया। महाकवि साँड़ के समकालीन कवियों में दो ऐसे लेखक और कवि भी थे, जिनके नाम मानुनासिक थे। वे थे पण्डित नकछेद तिवारी और नकलोल तिवारी ! नकछेद तिवारी का तो आप लोग जानते ही होंगे, नकलोल तिवारी का वर्णन मैं यहाँ संक्षेप में ही कर देता हूँ। ये तिवारी जी कहाँ रहते थे, सो तो ठीक मालूम नहीं, पर इतना अवश्य है कि वे जो कुछ लिखते थे उनमें पाँच प्रतिशत के हिसाब से उनका लिखा हुआ भी रहता था। बचपन में ये गुलगप्पे बेचते थे, कुछ दिनों तक 'चने जोर गरम' भी बेचा। कुछ दिन चूरन बेचने वालों के भी साथ रहे। उन्हीं की संगति से चूरन के लटके सुनते सुनते इन्हें भी कुछ कविता करने की सूझी।

बस फिर क्या था, बरसाती मेढकों की तरह इन्होंने अपना एक दल कायम किया। न मालूम, किस पाजी ने इन्हें यह गुरुमन्त्र दे दिया—

"बेटा यदि तुम कुछ अपना नाम चाहते हो तो औरों को बदनाम करो।"

बस फिर क्या था, इन्होंने सूर, तुलसी, केशव, बिहारी

आदि महाकवियों को गाली देना प्रारम्भ कर दिया। धीरे धीरे नाम कमाने के चस्के में कुछ मौलिक बातों के फेर में पड़ने लगे। कहीं से कोई नायिका भेद भी आप ढूढ़ लाये। उसका सम्पादन भी कर डाला।

अब क्या था! जहाँ थे तिवारी जी ही थे। एक दिन एक कवि-सम्मेलन में यारों ने कहा—भाई आज तो कोई ऐसी मौलिक बात कहो, कि कवियों में खलबली मच जाय। तिवारी जी भी अपनी स्थूल बुद्धि के अनुसार झट तैयार हो गये। आप कहने लगे—सज्जनो! संसार की सभी नायिकाएँ परकीया ही थीं। सब नायिका-भेद इसी के अन्तर्गत है। कवियों की स्त्रियाँ सदैव खण्डिता ही रहती हैं। गोस्वामी जी, महाकवि सूरदास से ७०० वर्ष पूर्व बिहारी के वंश में रोहिताश्वगढ़ के किले में पैदा हुए थे! अंग्रेजी के कवि शेक्सपीयर ने रावर्ट साउदी की जीवनी में जो अलंकार भर दिया है उसी की चोरी कर के हिन्दी में रीति काव्य का प्रादुर्भाव किया गया है—" इत्यादि!

श्रोताओं ने ताली पीट दी—"क्या बात है। समालोचक हो तो ऐसा! दूध का दूध और पानी का पानी कर दे।"

किन्तु तिवारी जी के दुर्भाग्यवश उनके पिता भी उस सभा में उपस्थित थे! उन्होंने तो कभी कविता की नहीं थी! पर कविता किस जन्तु-विशेष का नाम है, इसे वह जानते थे। तिवारी जी की ऊल जलूल बातें सुनकर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। बस अनाथ जिसप्रकार क्रौञ्चमिथुन के दुःख पर महर्षि वाल्मीकि

के अन्दर काव्य का स्फुरण हुआ था, ठीक उसी तरह ती हो मुँह से यह पद निकल ही तो पड़ा— नी

घर में बाकी बचा न एको लोटा थरिया।
तुमको तो है भैंस बराबर अच्छर करिया॥
नाचा करता इधर ज्यों दुष्ट बँदरिया।
अच्छा पाया नाम कमाने का यह जरिया॥
चल हट, जाके साफ किया कर कोई नरिया।
अरे दुष्ट, रे लण्ठ, अबे नकलोल तेवरिया!!

उनके पिताजी न जाने कब तक क्या क्या बकते किन्तु तिवारी जी ने उनके पैर पकड़ और नाक रगड़ कर क़सम खायी कि अब किसी सम्मेलन सभा में न तो जाऊँगा और न भाषण करूंगा। तब कहीं बुड्ढ़े शान्त हुए!

भाइयों और भौजाइयों! कहना तो बहुत था, किन्तु अब समय बहुत हो गया, अभी कितने ही कवि अपनी कविता सुनाने के लिये उत्सुक बैठे हैं। अब मैं परम पिता से प्रार्थना करता हूँ कि वे आप लोगों को महाकवि लौंडू की तरह योग्य बनावें, जिससे आप लोग हिन्दी भाषा का जीर्णोद्धार करते हुए विश्वसाहित्य में समादर पा सकें। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

शठानन्द शास्त्री

गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन यदि ठीक मान लिया जाय तो, जिस प्रकार पवनपुत्र द्वारा लंका-दहन होने पर मन्दोदरी ने रावण को गाली देना प्रारम्भ किया था, ठीक उसी प्रकार जब 'हँसोड़' के सम्पादक ने मुझसे एक लेख माँगा, तो मैं ने एक साँस में उन्हें दो सौ तिरपन गालियाँ दे डालीं। एक तो योहीं खुदा की दी हुई औंधी खोपड़ी, दूसरे बुक्सेलर साहब से वहाँ की खरीदी हुई सन् १९१४ की टुटही कलम पर मित्रता का संकोच होता ही है। सम्पादक साहब मेरे लँगोटिया यार थे। अतएव मैं भी मित्रता निभाने की विचार से कलम कुल्हाड़ा लेकर लेख लिखने बैठ ही तो गया।

बैठ तो गया पर जब दिमाग़ चले तब तो! सिर पर 'अन्नपूर्णा फार्मेसी' के 'कामिनिया ऑयल' की खूब मालिश की; पर वहाँ कौन सुनता है! वह भी तो किसी अन्धेरी कचहरी

से कम न था ! इसी उधेड़बुन में पड़ा जब मैं Confused हो रहा था, तभी मेरी ससुराल के पुरोहित श्रीमान् शठानन्द जी आते दिखलायी पड़े। इतनी जोर से उछलने लगा मानो उसमें Earthquake (भूकम्प) आगया हो !

श्री शठानन्द कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। इन्हें आप कोई ऐसा वैसा न समझ लीजियेगा ! आप अपने गाँव 'लड्डपुरा' में एक अत्यन्त असाधारण पुरुष माने जाते हैं। आपकी शरीर-रचना करते समय बूढ़े विधाता बाबा को कुछ झपकी आ रही थी ! जिससे आपके कुछ अङ्गों में Compare and contrast करने की काफी गुञ्जाइश थी। न मालूम भगवान् ब्रह्मा को आपसे क्या प्रेम था कि आपने शास्त्री जी को ठीके पर, ठीकेदारों से बनवाना उचित न समझा और स्वयं ही उन्हें गढ़ा ! भगवान् ब्रह्मा चाहे स्वयं पक्षपात करें तो करें, मगर उन्हें यह कब स्वीकार था कि उनके बनाये श्री शठानन्द जी भी पक्षपात करें। वे तो चाहते थे कि शास्त्री जी सबको एक आँख से देखें। इसी-लिये शास्त्री जी ने सबको एक आँख से देखने के योग्य होकर ही इस संसार में पदार्पण किया है ! आपकी सुन्दरता का वर्णन मैं भला क्या कर सकता हूँ, फिर भी आपकी सुन्दरता का कुछ वर्णन तो अवश्य ही करूँगा।

शास्त्री जी का मुँह किसी घोड़े से कम सुन्दर तो किसी भी हालत में नहीं है। आपकी ठीक ५ इञ्च की नाक गाँव भर की स्त्रियों को चुम्बक की भाँति अपनी ओर खींच लेती

है! आपके ठीक पनडब्बा सरीखे ललित लोचन, पाँच छ साल के बालकों को भयभीत करने की कला में पक्के है। आपके सिर के बाल इस तरह उड़ गये है कि जैसे गधे के सर पर से सींग। अब क्या बतावें, कामदेव और आप में सिर्फ इतना ही भेद है कि वह बेचारा अनङ्ग है और यह हैं पूरे सवा तीन फीट के। विष्णु और आपमें केवल इसी बात की असमानता है कि वे घन-श्याम हैं तो ये बिलकुल तमाखू के समान मनोहर श्यामवर्ण के हैं। चन्द्रमा बिचारे की क्या हिम्मत जो उनके मुख की तुलना में ठहर सके। अजी उसमें कलंक-कालिमा है ही कितनी!

पोशाक भी आपकी निराली ही है। कमर के नीचे और घुटने के कुछ ऊपर तक की बावन्डी को घेरे हुए आपकी निराली विशाल धोती, शुद्ध बिलायती कपड़े की एक फटी मिर्जई, सर पर छींक देने से उड़ जाने वाली दुपल्ली टोपी—बस यही सब आपके वस्त्र हैं! कभी-कभी व्याह बारात में जाने के समय आप एक पगड़ी भी अपने सिर पर बाँध लिया करते हैं, जिसे आपने अपनी ससुराल में पायी थी और जो आपके ससुर के फूफा के किसी मामा की थी।

आपकी विद्या का क्या कहना! बिल्कुल अगाध! गाँववाले आपको साक्षात् गणेश ही समझते हैं! कर्मकाण्ड, वैद्यक, धर्म-शास्त्र, वेदान्त, ज्योतिष आदि कोई भी विषय नहीं, जिसमें आपकी थोड़ी बहुत घुस-पैठ न हो! एक दिन एक विद्वान् पण्डित आपसे शास्त्रार्थ करने के लिये आपके गाँव में पधारे। कहीं यह समाचार

गाँव वालों को मिल गयी ! वे सब लट्ठ लिये 'मार-मार' करते दौड़ पड़े। रास्ते में ही उनसे और उन शास्त्रार्थ-स्पृही पण्डित से भेंट हो गयी ! गाँव वाले बोले—"अरे तू का सासतरी जी से सता-रथ करबा ! ओनके अइसन पंण्डित ए बखत कहीं न मिलिहैं। अबहीं ओही दिन्नै एक पण्डित आयल रहा, तबन जब सास्तरी जी ओसे कहलेन कि हम चारो वेद वेदनी, अउर ओनके बाल बच्चन के आपने आँख से देखले हई, तब्बै ऊ भाग गयल"।

अपने ससुराल में ही मुझसे पहिले पहल शास्त्री जी से भेंट हुई थी !

वे जब जनवासे में आये थे तो मुझसे खूब छनी थी। वहाँ वे अपनी विद्वत्ता दरसाते हुए बोले—बेटा ! तुम कौन किताब ऐसा क्या नाम से कि संसकीरत में पढ़ते हो ? औय ! भारतानुवर" " बस् ! यही तो कहता हूँ कि अब पढ़ाई में कुछ रह नहीं गया। जब तक अलग से पाठशाला में क्या नाम से संसकीरत न पढ़ें, तब तक पढ़ाई कैसी ! मैंने भी कम पुस्तकें नहीं देखी हैं ! मेघदूत कवि के बनाये 'कालीदास नाटक' हरिश्चन्द्र लिखित 'भारतेन्दु काव्य' शकुन्तला मुनि लिखित लछमण सिंह नाटक का भाष्य, बिहारी कवि की बनाई 'पद्म सिंह सतसई' मिश्रबन्धु बिनोद की लिखी कविता कौमुदी, और 'प्रियप्रवास' कवि के बनाये 'भूषण ग्रन्थावली' उपन्यास आदि अनेक ग्रन्थ क्या नाम से पढ़ चुका हूँ।

मैं गवाई में रहता हूँ। इससे तुम्हारे हिन्दुस्तान का क्या हाल

ख्याल है सो क्या नाम से मैं नहीं जानता ऐसा न समझना। मेरे मित्र घिथरू मिसिर के यहाँ 'जानकी शरण' नामक एक पत्र आता है जिसके सम्पादक 'कविवर सूर्य' हैं ! और जो काशी जी से निकलता है ! अभी परसों उसमें पढ़ा था कि छिवेलेरा ने किसानों से क्रान्ति करने को कहा था जिसपर पटेल साहब ने उन्हें कैद कर लिया ! यह भी पढ़ा था कि गोमती नदी में बाढ़ आगयी थी, जिससे सारा राजपूताना और हैदराबाद बह गया !

हँसी के मारे मेरा बुरा हाल था ! किसी प्रकार पण्डित जी से पिण्ड छुड़ाने के लिये बोला—"हाँ आपने तो निःसन्देह बड़ा अध्ययन और अनुभव प्राप्त किया है। आप तो किसी अखबार के सम्पादक होते तो जनता को सदैव ताजी और सच्ची खबरें प्राप्त होती रहतीं और कालिदास, तुलसीदास आदि के विषय में भी कुछ जानकारी प्राप्त होती।

शास्त्री जी मस्त हो गये। बोले—कहाँ हउव हो पाँड़े ! सरसतिया क बड़ा अच्छा भाग्य रहल, जवन अस विद्वान् पति पाइस। केतना नम्र हउवन ! बड़न क आदर करै में केतना सुशील हउअन ! वेदन में भी त लिखा बाय—

"अस्ति गोदावरी तीरे विशालः शाल्मली तरुः"।

मैं डर रहा था कि इस बार कहीं जोर से हँस न पड़ूँ और शास्त्री जी समझ न जायँ कि यह मुझे वास्तव में महापण्डित समझ रहा है ! खैर कुशल हुआ कि साले साहब ने बीच में ही टपक कर कहा—"जीजा जी उठिये ! भोजन तयार है।"

"सम्पादक की दुम !"

दूबे जी सम्पादक थे ! इस बात को मथुरा के सभी पढ़े लिखे लोग जानते थे। सम्पादक होना कोई साधारण बात नहीं है ! कितने आदर और सम्मान का पद है ! हाथ में झोला लटकाये और झोले में कागजों का विशाल कलवार भरे, चार बीड़े पान इस गाल में और चार बीड़े उस गाल में दबायें, आँखों पर सुनहली कमानी का चश्मा लगाये और हाथ में मोटा सोंटा झुलाते, कमर लचकाते जब आप इस ओर से उस ओर घूम जाते थे, तो देखने वाले दंग रह जाते और "सम्पादक जी नमस्ते" की झड़ी सी लगाकर आपका स्वागत करने लग जाते थे !

सम्पादक के सिवाय दूबे जी और भी कुछ थे। बाहरी जनता की दृष्टि में वे केवल शुष्क सम्पादक मात्र भले ही माने जाते रहे हों, पर वास्तव में 'प्रेस' के अन्दर आप का एकाधिपत्य था और आपही सब विभागों के एकमात्र नायक थे !

आपही प्रूफरीडर तथा फोरमैन भी थे। कमरे की स्वच्छता और सफाई ऐसा उपयोगी प्रश्न भी आप को ही हल करना पड़ता था! प्रेस—मैनेजर के ज्येष्ठ पुत्र रविशंकर के आप प्राइवेट ट्यूटर भी थे। उनके दो छोटे छोटे बच्चों के खिलाने आदि का महत्वपूर्ण भार भी आपके ही सुदृढ़ कन्धों पर न्यस्त था। मैनेजर महोदय के वृद्ध पिता श्रीयुत बिरजू बाबू के लिये सायं-काल भांग भी आप ही पीसा करते थे! इसीसे जाना जा सकता है कि सम्पादक जी कितने जिम्मेदार थे तथा उनकी प्रतिभा कैसी सर्वतोमुखी थी।

हाँ, यह तो मैं कहना ही भूल गया कि सम्पादक जी को कविता का शौक़ था। आपके घर में "संगीत हरिश्चन्द्र" और 'कव्वाली-कलाप' नाम के दो अमूल्य ग्रन्थ-रत्न वर्तमान थे। उन्हें आपने कण्ठाग्र कर डाला था। उन्हीं के आधार पर आपने कुछ कविताएँ लिख डाली थीं! उन्हें आप यथासमय अपने पत्र के टाइटिल पेज पर छापते थे।

सम्पादक जी की नगर में बड़ी प्रतिष्ठा थी। शहर के जब कोई हाकिम हुक्काम किसी सार्वजनिक कार्य में सम्मिलित होते तब सम्पादक जी की ही बुलाहट होती थी। यदि किसी अन्य नगर का प्रतिष्ठित राजपुरुष आपके नगर में पदार्पण करता तो उसके स्वागत-गान के निर्माण का कार्य आप को ही सौंपा जाता और आप बड़ी ही तत्परता और तन्मयता से अपनी इस कला का परिचय दिया करते थे!

एक बार मथुरा में कानपुर के प्रसिद्ध मिल—मालिक सेठ भीखम भाई पाटनवाला पधारे। म्युनिसपैल्टी की ओर से आपके स्वागत का आयोजन हुआ। नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति टाउन-हाल में आपका स्वागत करने के लिये उपस्थित हुए! सभापति महोदय ने चूबे जी से स्वागत-गान पढ़ने के लिये अनुरोध किया।

चूबेजी ने पहिले तीन चार बार खाँसा, फिर रूमाल से नाक साफ करने के बाद चश्में को साफ किया और उसे यथास्थान नासिका के अग्रभाग पर स्थापित करते हुए दूबोकन्द-निकन्दन-विनिन्दित उच्चस्वर में कविता का पाठ प्रारम्भ किया—

सेठ भीखम भाई पाटन वाला पधारे हैं,
मुबारक हो मुबारक हो।
भाग्य मथुरा नगर के धन्य हमारे हैं,
मुबारक हो मुबारक हो॥
सेठजी का नाम संसार में कौन नहीं जानता,
मुबारक हो मुबारक हो।
आप कानपुर के एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न ऊँचे व्यापा- ...ारी
मुबारक हो मुबारक हो।
आपके आजाने से हम लोगों को भी आपके द... में 'बोर्ड' के
...गे 'मेम्बर' शब्द
मुबारक हो मुबारक हो।

कविता समाप्त होने पर खूब तालियाँ
दर्शक और श्रोता थे वे सब दफ्तरों ... इस भलमनसाहत के
बोर्ड के मेम्बर अथवा वकील डाक्टर

कला के भीषण मर्मज्ञ हुआ करते हैं। इन सभी ने दूबे जी की इस अद्वितीय कविता की मुक्तकण्ठ से सराहना की। समालोचकों की तरह ये बेचारे दोष-दिग्दर्शन करने के अभ्यस्त तो थे नहीं! दूबेजी इस प्रशंसा से बड़े प्रसन्न हुए और बोले -मेरी कविता आप को पसन्द आयी, इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इस कविता में 'विलुप्तपदार्थ' अलंकार है। आज कल के कवि बिना अलंकार की कविता करते हैं। "उन्हें पदपदार्थ का तो ज्ञान ही नहीं रहता।"

एक बार मथुरा के डाक्टर छुट्टनलाल गर्ग म्युनिस्पैल्टी की मेम्बरी के लिये खड़े हुए। वे हमारे सम्पादक जी से मिलने आये। दूबे जी को वे असाधारण बुद्धिमान् समझते थे। गर्ग जी ने उनसे अनुरोध किया कि आप कोई ऐसी चुहचुहाती और कचकचाती कविता बना देवें जिससे जनता पर काफी प्रभाव पड़े और जिसे पढ़कर लोग मुझे ही वोट दें। गर्ग जी ने उनसे अपना एक Manifesto भी तैयार कर देने को कहा। इन सब के लिये दूबे जी विशेष तत्पर हो जायँ ऐसा विचार कर बे जी को भांग छानने के लिये ।।=)।। आने पैसे भी प्राह के 'प्रचण्ड' (यही सम्पादक जी के साप्ता- था) में लोगों ने इस कविता को बड़े प्रेम

खड़े मेम्बरी के लिये।
न इस नौकरी के लिये॥

गर्ग जी मेम्बरी के लिये हैं खड़े।
फीस इनकी डबल है, ये डाक्टर बड़े॥
साफ गलियाँ ये मथुरा की करवायेंगे।
बात क्या फिर जो पैरों में कंकड़ गड़े॥
गर्ग जी हैं खड़े मेम्बरी के लिये।
देश-उपकार के हैं तरीके लिये॥
वोट को दीजिये दीजिये दीजिये।
बोर्ड में भेजिये भेजिये भेजिये॥
मेम्बरी के लिये हैं खड़े गर्ग जी।
इस नगर के हैं नेता बड़े गर्ग जी॥"

कविता के नीचे गर्ग जी की गुणावली गायी गयी थी। उनके नाम से एक मेनिफेस्टो भी छपा था। उसमें गर्ग जी की ओर से मेम्बर हो जाने पर नगर की सेवा करने के बारे में उनका निम्न लिखित प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित था।

(१) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि आप लोग मुझे वोट देकर चुनेंगे तो मैं 'मेम्बर' अवश्य हो जाऊँगा।

(२) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेम्बर होने पर मैं 'बोर्ड' के अन्दर जरूर जाऊँगा और अपने नाम के आगे 'मेम्बर' शब्द का प्रयोग करूँगा।

(३) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी इस भलमनसाहत से मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा।

(४) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस कार्य में मैं आप लोगों को बड़ा बुद्धिमान समझूँगा।

(५) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं बोर्ड में ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि वह भाँग का भाव कम करादे जिससे सवेरे शाम पूरे मथुरा नगर का भाँग पीने को खूब सुपास हो।

(६) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं ऐसा प्रबन्ध कराऊँगा जिससे समस्त मथुरा जिला को प्रातःकाल दस बजे से लेकर रात एक बजे तक लगातार पानी मिला करे। रात एक बजे से सवेरे दस तक सिर्फ ६ घण्टे पानी मिलना बन्द रहेगा। इससे एक लाभ होगा। यदि पानी तड़के ६ बजे ही पाइप में आ जायगा तो आप लोग निपटने नहाने को बाध्य होंगे और सवेरे ही सुख की नींद छोड़नी होगी। अतः जब पानी १० बजे मिलेगा तो आप स्वयं ६ बजे के बाद उठेंगे, जिससे आप का स्वास्थ्य बढ़ेगा।

(७) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेम्बर हो जाने पर मैं अपने वोटरों से फीस न लूँगा, उनके घर में किसी के बीमार हो जाने पर उसकी दवा भी मुफ्त में करूँगा। यदि आवश्यक होगा तो घर से ही पथ्यपानी का भी प्रबन्ध कर दूँगा। आदि आदि।

दूबेजी के एक मित्र थे बा० छुरपेटन सिंह। बा० छुरपेटन सिंह ने एक दवाखाना खोल रक्खा था। उसमें आप 'दन्त-मंजन' और 'नेत्र-सुरमा' ऐसे दो आलस्य और दुष्प्राप्य औषध रखकर बेंचते थे। आपने एक बार दूबे जी से कहा—यार, कोई

कविता बनाकर हमारे दन्त मंजन और सुरमे का विज्ञापन करते जिसमें कुछ बिक्री बट्टा बढ़ता। फिर क्या था 'प्रचण्ड' के आगामी अंक में यह कविता दिखलायी पड़ ही गयी—

"खरीदें शौक से मेरा निराला दाँत का मंजन।
जगत् में सब दवाओं से है आला दाँत का मंजन।
मलेंगे रोज तो फिर रोग कोई हो न पावेगा।
करेगा यह सभी बीमारियों के गर्व का गंजन।
रगड़कर रोज दाँतों में इसी को भक्ति श्रद्धा से,
महाकवि हो बनारस के गये थे विप्र दुख-भंजन।
रगड़ते हैं इसी को कालेजों के छात्र भी हर्षित,
इसी को प्राप्त कर, करते हैं प्रोफेसर, मनोरंजन।
बना देगा सभी दाँतों को यह मजबूत लोहे सा,
घसीटेंगे स्वयं दाँतों से फिर तो रेल का इञ्जन।"

सम्पादक जी तंग होते थे तो केवल अपने प्रेस के कम्पोजीटरों से। यद्यपि सम्पादक जी का अखबार केवल तीन ही पृष्ठ का निकलता था और उसपर प्रूफ देखने में ये उसी प्रकार तल्लीन हो जाया करते थे जिस तरह इनकी पत्नी अपनी माँ के बालों में से जूं निकालते वक्त होती थी, तथापि कम्पोजीटरों ने बुद्धि के विरुद्ध बगावत का ऐसा झण्डा फहरा रक्खा था, कि वे सब बार बार अशुद्धियों की भरमार कर देते थे। हिन्दूधर्म शास्त्र की आज्ञा है कि शौच के बाद बायें हाथ को १७ बार मिट्टी से मल कर धोना चाहिये। पूरे जी इस आदेश

का पालन प्रूफ देखने के सम्बन्ध में करते थे। १७ बार प्रूफ देख कर १८ वीं बार वे छापने का आर्डर देते थे। किन्तु यदि कम्पोजीटर लोग फिर भी वर्तमान टीकाकारों की तरह पाठान्तर कर दें तो इसमें दूबे जी का क्या दोष? एक बार तो इन मूर्खों ने अखबार में दूबे जी के नाम के आगे प्रधान सम्पादक के स्थान पर 'गधा न सम्पादक' तक छाप दिया था!

सम्पादक जी ने एक बार अपनी 'वियोगी' शीर्षक कविता. मय अपने चित्र के छपने को दी थी।

कविता में एक चरण यह था—

बेदम सा पड़ा हुआ हूं,
लगता है सूना घर भर।
ऊपर से हँसता रहता,
हूं आग छिपाये अन्दर।

प्रातःकाल दुबे जी ने प्रेस में आकर देखा कि मुद्राराक्षसों ने इस चरण को इस तरह छापा है—

"बेदुम सा खड़ा हुआ हूँ
लगता है चूना छरछर!
दूसर हूँ, हसुआ सस्ता,
हूँ प्रान छिपाये बन्दर।

सम्पादक जी के काव्य का एक चरण यह था—

बे सूत्रधार का नाटक,
मैं बिना राग का बाजा।

तू तज कर चली गयी क्यों,
तू है निष्ठुर अब आजा ॥

कम्पोजीटरों ने इसे इस प्रकार विशुद्ध स्वरूप में छापा था—

वे गूजधार का पाठक,
मैं किनाराम का साला।
तू चजथक चली गयी क्यों;
तू है मिस्टर की माता ॥

और सम्पादक जी के चित्र का ब्लाक उल्टा छपा था।

एक बार आपने अखबार में यह समाचार छापने को दिया—"विगत २६ जनवरी को पार्लमेण्ट में भारतवर्ष के बारे में भाषण करते हुए सर सैमुएल होर ने डाक्टर अम्बेडकर की बड़ी प्रशंसा की।" पाठकों ने दूसरे दिन इस समाचार को निम्नलिखित रूप में पढ़ा—"विगत ५६ जनवरी को पिपरमेण्ट में भरतवर्षा के बारे में भाषण करते हुए डाक्टर होर ने सर सैमुएल अम्बेडकर की बड़ी प्रशंसा की।"

एक बार सम्पादक जी के घर से पत्र आया कि उनकी पत्नी बड़ी बीमार है। आप छुट्टी लेकर घर गये। देखा पत्नी को कोई रोग नहीं है। पूछा क्यों जी तुम तो भली चंगी बैठी हो। फिर रोग का बहाना क्यों किया? पत्नी बोली—यों शायद तुम आते नहीं। मेरी सखी बिमला ने अबकी २० भर चाँदी की हँसुली बनवाई है। चीज अच्छी है। मैंने सोचा तुम्हारे आने पर मैं भी वैसी ही तैयार करवा सकूँगी। सो अब तुम आ ही

गये। शाम को सोनार बुलवा कर सब समझ न लो!

सम्पादक जी तो खूब चकराये! पत्नी ने कैसा कुछ बनाया! किन्तु जितने रुपयों का व्यय था, उतने रुपये उनके पास थे नहीं, अन्त में पत्नी से कहा सुनी हो गयी। पत्नी भी आप की आदर्श गृह महिला थीं। यद्यपि आपके गाँव में कांग्रेस का प्रचार नहीं हुआ था, फिर भी आपने 'सविनय अवज्ञा' और 'असहयोग' का सिद्धान्त बहुत दिनों से स्वीकार कर रक्खा था। उन्होंने अल्टिमेटम दिया! कुछ परिणाम न निकलने पर वे नैहर चली गयीं।

सम्पादक जी बड़े दुखी हुए। न इधर के रहे न उधर के। इस वसन्त की ऋतु में ६ महीने पर घर आये, तो पत्नी रुष्ट होकर पीहर चली गयी! सोचा मैनेजर को पत्र लिख कर कुछ रुपये मँगाऊँ और स्त्री को भी उसके पीहर में पत्र भेजूँ कि किसी प्रकार चली आवे। आपने दोनों स्थानों पर पत्र लिखा और बूढ़े नौकर टीमल को दिया कि डाक में छोड़ आवे।

सम्पादक जी को यह स्वप्न में भी आशा न थी कि मैनेजर साहब रुपये भेजेंगे। परन्तु जब उन्होंने स्वयं खिड़की में से दूर से आते हुए मैनेजर साहब को देखा तो बड़े प्रसन्न हुए, और उनकी साधुता पर आश्चर्य करते हुए नीचे दौड़े! "वाह आज गाँव पवित्र हो गया। मुझे ऐसी आशा न थी कि श्रीमान् के पाँव मेरे गाँव में आवेंगे।

परन्तु दुष्ट मैनेजर तो लगा गालियों से इनके पूर्वजों को पिण्ड-दान देने! गाँव भर के तमाशबीन एकत्रित होकर मामला समझने

की चेष्टा करने लगे ! मैनेजर बोला—मैं नहीं समझता था कि ये दुबे जी ऊपर से मेरी इतनी अभ्यर्थना और प्रशंसा करते हैं, तथा इनके भीतर इतने बुरे विचार मेरे प्रति भरे हुए हैं। यह लीजिये आप लोग स्वयं यह चिट्ठी पढ़ देखिये। मेरे रुपये खाकर मेरी ही निन्दा !" यह कह कर मैनेजर ने वह चिट्ठी गाँव वालों के सामने फेंक दी। पत्र यों था—

हृदयेश्वरी,

सस्नेह आलिंगन।

आखिर तुम रूठकर चली ही गयीं। तुमने मेरी परिस्थितियों पर कुछ भी विचार नहीं किया। मेरा मैनेजर बड़ा दुष्ट है। प्रथम तो वह पाजी मुझे छुट्टी ही नहीं दे रहा था। किसी प्रकार उसने मुझे छुट्टी दी। अब यदि उससे वेतन के रुपये भी यहाँ से अगला मँगाऊ तो क्या वह दे देगा। है वह एक ही सूमड़ा ! उसके पास रुपयों की कमी नहीं। स्वयं किस ठाट से रहता है। किन्तु मुझे वेतन देते उसकी नानी मरती है। यह तो कहो कि मैं ऐसा रोब बनाये रहता हूँ कि जिससे मालूम हो कि दुबे जी १००) मासिक से कम क्या पाते होंगे। पर देता तो है आखिर १७) रु० महीने ही न ! देखो मैं साहस करके उसे पत्र लिख रहा हूँ। यदि वह कठोर पत्थर पसीजा तो रुपये भेज देगा, नहीं तो यहीं किसी से उधार ले लूँगा। अब तुम हठ छोड़ कर चली आओ !

तुम्हारा—
चन्द्रशेखर दुबे।

बात यह हुई कि शीघ्रता में उन्होंने अपनी पत्नी वाला पत्र मैनेजर के लिफ़ाफे में और मैनेजर वाला पत्र अपनी पत्नी के लिफ़ाफे में बन्द कर के डाक में छोड़वा दिया था।

मैनेजर बोला—क्यों देखी न अपनी करतूत! इसी प्रकार आप का दूसरा पत्र, जो आपकी पत्नी के यहाँ चला गया है, और जो वास्तव में मेरे लिये लिखा गया था, मेरी प्रशंसा से भरा और आपकी पत्नी की निन्दा से परिपूर्ण होगा।

बात तो सच थी। जो पत्र दुबेजी के दुर्भाग्य से उनकी पत्नी के पास पहुँच चुका था, उसमें उन्होंने मैनेजर से रुपयों की याचना करते हुए उनका बड़ा गौरव-गान किया था। पश्चात् उसमें लिखा था—

मैनेजर साहब क्या करूँ, रुपये माँगते मुझे दुःख हो रहा है, पर मेरी स्त्री बड़ी डाइन है। जब देखो रुपये की माँग! मैं तो दुखी हो गया हूँ। अबकी मथुरा आऊँगा तो वहाँ से वापस आने का नाम न लूँगा। ससुरी हट्टी कट्टी है, पर रोग का बहाना किया था, और अब उसकी दुष्टता तो देखिये कि रुष्ट होकर नैहर भाग गयी है! दुबला पतला आदमी हूँ, इससे कुछ भय लगता है, नहीं तो उसको इतना पीटता कि वह भी जानती! ख़ैर इस बार तो रुपये भेज कर मेरी प्रतिष्ठा बचाइये। इत्यादि।"

सम्पादक जी के मस्तिष्क में ये ही सब बातें बिजली की भाँति दौड़ रही थीं। "यदि स्त्री ने यह पत्र पढ़ा, तब मेरा कौनसा

कर्म-काण्ड होगा ?" अड़ोसी पड़ोसी हँस रहे थे। दुष्ट मैनेजर दुबेजी को बेतरह घूर रहा था। वह बोला, लीजिये अपना बकाया हिसाब ! अब मुझपर इतनी कृपा करने का काम नहीं है।

गाँव के बड़े बूढ़ों ने जिनके पास दुबे जी की बदौलत 'प्रचण्ड' की कुछ प्रतियाँ प्रति सप्ताह पहुँचा करती थीं, उनकी पैरवी करते हुए कहा—जाने दीजिये, पीठ पीछे सम्राट् लोग तक को गाली दिया करते हैं। आपको बुरा न मानना चाहिये। केवल पत्नी को प्रसन्न करने के लिये ही आपकी निन्दा की थी। आखिर सम्पादक जो ठहरे।

मैनेजर ने बिगड़ कर कहा—अजी बाज आया ऐसे सम्पादक से, ये सम्पादक हैं, या सम्पादक की दुम !

इतिहास बतलाता है कि बस इसी मंगलमय दिवस से दूबे जी का यह लोक-विख्यात नामकरण हुआ !

—:*:—

पं० हरबोंग उपाध्याय

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

अरे साहब कुछ न पूछिये। इस समय बड़ा 'बिज़ी' हूँ। अभी अभी सबको नीचे से बिदा करके कोठे पर आया हूँ। आज कल बनारस में फर्रुखाबाद के सुप्रसिद्ध व्याख्यान-वाचस्पति पं० हरबोंग उपाध्याय पधारे हुए हैं। आप बड़े भारी साहित्यिक हैं; ताड़ के पेड़ से भी ऊँचे ! कल से मेरे ही यहाँ ठहरे हुए हैं। आपसे मिलने के लिये नगर के बड़े-बड़े 'लीडर' और साहित्यिक मेरे यहाँ चले आ रहे हैं। कहिये, किसी आदमी को अपने यहाँ टिकाना भी कितना अच्छा है ! कुछ कष्ट तो अवश्य होता है पर नाम भी तो हो जाता है। हे देखिये, बात तो सच यह है कि युग ही प्रचार का है। आप लाख कहें मैं तो यही कहूँगा कि आप भी प्रोपोगैण्डिस्ट हैं। आप खुदा

जरूर मानेंगे, पर माना कीजिये ! यही न होगा कि आप रुष्ट हो जायेंगे तो मेरा लेख न छापेंगे। किन्तु याद रखियेगा अब मैं वही पुराना गुमसुम लेखक नहीं हूँ जो टिकट लगा-लगा कर रजिस्टरी चिट्ठियाँ भेजा करता था। अब तो आठ-आठ 'रिमाइण्डर' पर भी मैं टस से मस नहीं होता।

सम्पादक जी ! सचमुच आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। आपका सौभाग्य अचल हो ! आपकी भी नये-नये कवि और लेखक कैसी स्तुति किया करते हैं। जिस समय वे लोग आप के आस पास मँडरा कर आपका गुण-गान गाते होंगे, उस समय आप अपने को पता नहीं क्या समझते हैं।

सम्पादक जी, मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि यद्यपि संसार की दृष्टि में इस समय मैं एक विशिष्ट जन्तु समझा जाता हूँ, फिर भी आप मुझे वही काठ का उल्लू समझते हैं। भगवान् झूठ न बुलावें, इस समय इस धरातल का भार बढ़ाने वाले ऐसे केवल दो ही प्राणी हैं जो मुझे इस रूप में देखते हैं। उनमें एक तो आप ही हैं और दूसरी मेरी श्रीमती जी ! मैं तो आप दोनों को समान ही समझता हूँ दोनों के बारे में मेरी धारणा ऐसी ही है।

किन्तु बुद्धि सब आपके ही बाँट में पड़ी है, सो ऐसा नहीं। मैंने व्याख्यान-वाचस्पति जी को अपने यहाँ तो किसी खास मतलब से। बतला दूँ ? लेकिन यह है कि सम्पादकों के पेट में बात पचती ही

तुम्हारे 'ट्रेडिल मशीन' की कसम इस साल किसी से कहना मत ! लो बतला देता हूँ। सावधान हो कर सुनो ! इस साल मैं अपनी कुल कविताओं का संग्रह करके मंगलप्रसाद पुरस्कार, हरे हरे शिव शिव ! देव पुरस्कार के लिये भेज रहा हूँ। और तुम्हारे हरऔध जी उस समिति के एक प्रधान निर्णायक हैं। अब समझे महाशय जी ! हूँ न बुद्धिमान् ! मानते हो न ! तुम इसे प्रोपेगेण्डा कहोगे ! कहा करो ! कौन नहीं करता ! मैं तो इसे आपके कानों में लाउडस्पीकर लगा कर जोर से कह सकता हूँ कि जो आदमी प्रोपोगेण्डा की जितनी ही अधिक निन्दा करता पाया जाय, उसे उतना ही बड़ा 'विज्ञापन बाज' समझना चाहिये !

यार किसी की निन्दा न करनी चाहिये, पर सत्य बात कहने के लिये चित्त बेचैन हो उठता है। यह जो व्याख्यान-वाचस्पति जी आये हैं, बड़े ही नम्र हैं। पर उनकी यह नम्रता विलक्षण है। आप एन्ट्रेंस भी पास हैं। आपकी नम्रता का एक बड़ा सुन्दर प्रमाण देता हूँ। सुनिये।

कल वाचस्पति जी अपने एक प्रकाशक के लिये एक पत्र [illegible] रहे थे। आपने पत्र लिख कर नीचे अपना हस्ताक्षर किया "bong up-adhyaya" मैं उसी समय वहाँ पहुँच गया। [illegible] यह हस्ताक्षर मात्र देख लिया। मैंने कहा—"क्षमा [illegible] किसी का पत्र पढ़ना बड़ा अपराध है। किन्तु आपका [illegible] नहीं, हाँ आपका हस्ताक्षर मैं अवश्य पढ़ लिया है।" [illegible] जी बोले—"हैं हैं हैं हैं सो कोई बात नहीं है।

मैं तो इसे लिख कर-कर-कर के आपको सुनाता ही ! इसमें कोई भी हैं हैं हैं हैं हर्ज नहीं ! मैंने बड़ी श्रद्धा से कहा—यह आपकी अपार कृपा है। किन्तु मेरी एक प्रार्थना है। यह आपने अपने हस्ताक्षर में जो नाम का पहला अक्षर ह्रस्व लिखा है उसे कृपया बड़ा कर दीजिये !

वाचस्पति जी मुस्कराये—भबुआ जी, आप भले ही विद्वान् हैं पर इन रहस्यों को आप अभी समझ नहीं सकते। अभी सत्संग करिये, कुछ पद पदार्थ का ज्ञान हो, तब आप यह समझ सकेंगे।

"महाराज !" मैंने हाथ जोड़ कर पूछा—तो क्या आपके विचार से मैं उस महान् रहस्य को सुन सकने की योग्यता रखता हूँ।

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं, अवश्यमेव ! बात यह है कि ऐसा करना नम्रता का लक्षण है। मैं बहुत ही छोटा आदमी हूँ। अतएव अपना नाम भी छोटे ही अक्षर से लिखता हूँ।"

देखा आपने, नम्रता हो तो ऐसी !

अब फिर कभी समय मिलने पर लिखूँगा; इस समय तो गणेश जी के वाहन लोग मेरी उदर-दरी में व्यायाम की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। आशा है कि मेरी पुस्तक 'घण्टाघर' आपको मिल चुकी होगी। जरा अच्छी समालोचना कर दीजियेगा। उसमें की कविताएँ आप देख ही चुके हैं। जरा लिख दीजियेगा। कि "'शंख' जी के 'घण्टाघर' में जितनी कविताएँ हैं उनमें तुलसी की तल्लीनता, सूर की सुषमा, बिहारी की बिलासिता

और केशव की कल्पना का एक ही स्थान पर पेन्नमेल आचार बन गया है।"

आपका हितैषी और अनुग्राहक
परम सहृदय
पण्डित शिरोमणि श्री बृकोदरनाथ शर्मा 'शंख'
निसेसरगंज, काशी।



मुंशी जी के मामा

मुंशी जी मेरे मित्र हैं। एक दिन गदहबेला मे सायंकाल प्रोन ६ बजे लहुराबीर की चौमुहानी पर आपसे मेरी मित्रता का पवित्र सूत्रपात्र हुआ ! मैं अपने मित्र डाक्टर बनारसी प्रसाद भोजपुरी के साथ विचार मग्न हो चला जा रहा था कि अकस्मात चौमुहानी पर एक सज्जन की तोंद से टकराकर मेरी तल्लीनता में बाधा पड़ी।

मैं बिगड़ उठा—"अजी आदमी हो या मारवाड़ी ! देखते नहीं, एक सभ्य और सुसंस्कृत सज्जन चले आ रहे हैं। तुम भैंसा गाड़ी की भाँति टकरा पड़े !" फिर क्या था, लखनऊ की कोमल भाषा और भाव भंगियों में मुन्शी जी ने अपने हृदय के जिस सद्भाव का परिचय दिया, आज भी, जब कि हम दोनों एक दूसरे को 'लदसीवाहन' और 'वैशाखनन्दन' ऐसी उच्च साहित्यिक उपाधियों से अलंकृत करते हैं, उसकी याद बरबस आही जाती है।

मुंशी जी को कौन नहीं जानता ! आप अपने इस पवित्र नगर में शैतान की भाँति प्रसिद्ध हैं। हैं आप बड़े ही सीधे, मानों कुछ जानते ही नहीं ! कहा जाता है कि एक बार मुग़ल सम्राट् अकबर के शासन काल में महाराज बीरबल के कहने सुनने से आपके प्रपितामह के पितामह मुंशी फकीरचन्द "ऊँटखाने के मुंशी" का पद पाकर बड़े गौरवान्वित हुए थे। एक दिन सन्ध्या समय की बात है। मुन्शी जी अपने ऊँट खाने के दरवाजे पर चारपायी पर चौपाये की तरह लेटे हुए गोस्वामी तुलसीदास की एक नव-निर्मित चौपाई गाते हुए गुड़गुड़ी गुड़गुड़ा रहे थे ! उधर से जंगल से शिकार खेलकर दो घोड़ों पर सवार बादशाह और बीरबल आ निकले। मुंशी जी हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए ! बाद-शाह ने पूछा—क्यों जी, तुम यहाँ क्या काम करते हो ! मुंशी जी काँपते हुए बोल उठे—"हुजूर मैं मुंशीखाने का ऊँट हूं।" बादशाह की सारी थकावट मिट गयी। जी खोलकर हँसे, और मुंशी जी की तनख्वाह दूनी कर देने का हुक्म दिया।

इन्हीं मुंशी-फकीरचन्द के वंशधर मेरे मित्र मुंशी मलीदा-नन्द जी हैं ! ये भी बड़े ही सीधे हैं। इनके स्कूली-जीवन की घटना है। एक दिन इनके बड़े भाई ने एक कबूतर पकड़ा ! उसे इन्हें थमा कर वे कुछ दूर पिंजड़े का इन्तजाम करने चले गये। मुंशी जी के अध्यापक उधर से आ निकले। पूछा—क्यों जी मलीदा ! यह कबूतर मादा है या नर ? मुंशी जी बोले "गुरुजी, ठीक कह नहीं सकता। ठहरिये चारा डालता हूँ। यदि खा

लेगा तो नर होगा, और अगर खा लेगी तो मादा होगी !" अध्यापक महोदय अपने इस होनहार शिष्य की अद्वितीय बुद्धिमत्तापूर्ण सूझ पर गर्व और गौरव का अनुभव करते हुए चले गये !

मुंशी जी की सिधाई से लोग लाभ भी बहुत उठाते हैं। उन्हें 'बनाना' ही हमारी मित्र मण्डली का काम है। हमारी मण्डली में एक सज्जन हैं जिनका शुभ नाम पिनपिन पाँड़े है। ये मुंशी जी के पीछे बेतरह हाथ धोकर पड़े रहते हैं !

एक दिन हमारी गोष्ठी बैठी हुई थी। कुछ राजनीतिक चर्चा हो रही थी। पाँड़े जी ने कहा—सज्जनों, क्या यह दुःख पूर्ण अन्धेर की बात नहीं है कि मुंशी जी के साथ उचित बर्ताव नहीं किया गया ! देखिये हमारे मित्र मुंशी मलीदानन्द बर्मा को चाहिये कि वे भारतसचिव के पास दरख्वास्त दें। शायद आपके ही नाम पर 'बर्म्मा' नाम का एक सूबा बना रक्खा गया है। काशी का 'मुंशी घाट' भी शायद आपके ही दादा जी के नाम पर है ! लेकिन इन दोनों स्थानों की मालगुजारी में हमारे सीधे सादे मुंशी जी का कोई हिस्सा नहीं ! कितना अन्याय और कितना अन्धेर है !" मुंशी जी ने भारतसचिव के पास दरख्वास्त भेजी या नहीं, यह कोई जानने योग्य बात नहीं है पर उस रोज रातभर इस प्रश्न पर वे गम्भीरता से विचार करते रह गये, यह सत्य है !

'मुंशीघाट या 'बर्म्मा' मुंशी जी के नाम पर बसाये गये हों या नहीं, परन्तु यह घटना पटना के प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर

जारयाभाई पारयाभाई विद्यालंकार एम० ए० पी० एच० डी० ने अपने मध्यकालीन भारत के इतिहास में ठीक लिखा है, जिससे यह पता चलता है कि दाराशिकोह के जमाने में बनारस में मुंशी दीनानाथ नामक एक दरिद्र पटवारी रहा करते थे। उनका बड़ा लम्बा परिवार था! एक बार उनके किसी रिश्तेदार अफसर ने उन्हें दाराशिकोह से मिलाया। उस समय मुंशी जी ने अपना जो सुन्दर पद्यात्मक परिचय दिया, उसे सुनकर दाराशिकोह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उस पद्य को पत्थर के खम्भों पर खुदवा कर गण्डकी नदी के तीर-भाग पर अवस्थापित कराया! हाल ही में प्रोफेसर जारयाभाई ने इस शिलालेख का पता लगाया है! प्रोफेसर साहब की ही उक्त पुस्तक से मैं वह परिचय-पद्य नक़ल करता हूँ।

भोजन को भरपेट जुरै नहीं, पाऊँ कहाँ चटनी तरकारी।
पान की कैसे करूँ चरचा, मिल पावै नही सुरती औ सुपारी॥
नारी बड़ा घर में घरनी है, मिलै अबहूँ तो कृपा सरकारी।
मेरे नृपाल तुम्हीं पतवार हो, मैं कतवार, नहीं पटवारी॥

बादशाह ने प्रसन्न होकर मुंशी जी को बनारस का एक मुहल्ला जागीर में दे दिया। उस मुहल्ले में पहले काबुल से आकर कुछ गधे भी इकट्ठे थे। वे बड़ा हल्ला करते थे! मुंशी दीनानाथ ने कवित्त लिखा जिसके अन्तिम चरण का एक भाग यों है—'हल्ला करै बैठ के महल्ला बीच गदहा!' मुंशी जी भाँग का गोला खूब प्रेमसे छानते थे। आपका गोला प्रसिद्ध था।

इसलिये आपने अब इस मुहल्ले का नाम 'दीनानाथ का गोला' रक्खा ! मुंशी भलीदानन्द अपने पूर्वजों का नाम लेना शास्त्र-विरुद्ध मानते हैं अतः वे इस मुहल्ले को "गोलानाथ का दीना" कहते हैं।

अच्छा मुंशी भलीदानन्द को मारिये गोली, इनका तो आप कभी न कभी दर्शन करेंगे ही ! तब इनका इतना परिचय अभी से क्यों दे रक्खूँ ! अलबत्ता आपके मामा का चरित्र-वर्णन मैं यहाँ करूँगा, क्योंकि आपके मामा से आप लोगों का साक्षात्कार हो, यह भारतवर्ष के स्वराज्य पाने के समान ही असम्भव प्रतीत होता है !

मुंशी जी के मामा, गामा की तरह पुष्ट, पायजामा की तरह चुस्त और सुदामा की तरह सन्तुष्ट रहने वाले एक अद्भुत जन्तु हैं ! आप अपने गाँव गाजीपुर के एक मिडिल स्कूल में हिन्दी के अध्यापक हैं ! आपकी अवस्था इस समय दो कम बावन वर्ष की है ! आप यदि कहीं यात्रा में जाते हों और कोई टोंक बैठे—"कहिये लाला जी किधर की तय्यारी है" तो बस फिर आप (पहनते तो धोती हैं) जामें से बाहर हो जाते हैं। एक बार जवानी के दिनों में आप गाजीपुर से हाजीपुर—अपने ससुराल के लिये—रवाना हुए ! रेलगाड़ी द्वारा यह आपकी पहिली ही यात्रा थी। सुना था बिना टिकट लिये कोई आदमी रेलगाड़ी से सफर नहीं कर सकता। आप भी 'बुकिंग आफिस' की खिड़की के पास टिकट लेने पहुंचे ! बोले—हे पिता महोदय ('बाबू साहब' कहना

मुंशी जी अशुद्ध समझते हैं ! मुंशी जी शुद्ध हिन्दी के प्रयोग के पक्षपाती हैं ! बाबू और साहब को तो वे उर्दू फ़ारसी या विदेशी भाषा के शब्द मानते हैं !) हे पिता महोदय, शीघ्र ही मुझे भी प्रदान करिये । ('टिकट' शब्द विदेशीय होने से, उसका उच्चारण मुंशी जी ने नहीं किया) खैर वह टिकट बेचने वाले बाबू साहब अधिकांश टिकट बाबुओं की तरह बुद्धि के पीछे लट्ठ लेकर पड़ने वालों में नहीं थे। वे बुद्धिमान् थे ! अतः मुंशी जी का आशय समझ गये और बोले—"कहाँ जाइयेगा ?" अब क्या था ! मुन्शी जी तो अग्नि शर्म्मा हो गये ! बोले—"हे पिता महोदय ! आप भी कैसी वार्ता करते हैं। इससे आप से अभि-प्राय। मैं चाहे कहीं जाता होऊँ ! आप दे दीजिये ! किसी का सगुन बिगाड़ने के लिये अपनी नाक का कटाना ठीक नहीं। आप टोकते काहे हैं ? मैं ससुराल जा रहा हूं ! शीघ्र दीजिये !"

मुंशी होते हुए भी उर्दू के वातावरण से दूर रह कर हिन्दी के लिये यह अनन्य अनुराग अस्वाभाविक होते हुए भी उनका एक अनुकरणीय गुण है! मुंशी जी साहित्य से बड़ा प्रेम रखते हैं। साहित्यरत्न होकर भी आप फ़ोर्थ एक को पढ़ाते हैं इसमें आपको बड़े गौरव का अनुभव होता है। आपका यह अध्यापकी पेशा आपका पैतृक पेशा है ! आपके पिता मुंशी वृजसिंगार जी भी एक अंग्रेजी स्कूल के मास्टर थे। पढ़ाते थे वे सिर्फ़ हिन्दी-उर्दू ! एक दिन स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी समिति की बैठक थी ! सब अध्यापकोंसे कहा गया कि वे उसमें उपस्थित होकर

अपने अपने दर्जों के छात्रों की पढ़ाई लिखाई, चाल-चलन आदि पर अपना वक्तव्य दें। सेक्रेटरी ने एक अध्यापक से जिरह की—क्यों साहब, आप किस क्लास के "क्लास टीचर" हैं ? अब तक आपने कितना कोर्स पढ़ाया है ? आदि ! मुंशी जी यह सब सुन कर बड़े चकराये। अपनी बगल में बैठे हुए एक साथी अध्यापक से बोले—कहो यार यही प्रश्न हमसे भी तो न पूछा जायगा ? मुझे तो याद ही नहीं ! कहो तुम्हें पता है कि मैं किस क्लास का क्लास टीचर हूँ ?

हाँ, तो मुंशी जी (मुंशी मलीदानन्द के मामा) इन्हीं मुंशी दलखिगार ऐसे सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। आप एक हिन्दी मिडिल स्कूल के हिन्दी अध्यापक हैं और हिन्दी भाषा के लिये अपने उरस्थल में अपार प्रेम छिपाये हुए हैं ! हिन्दी में भी आप उच्चारण पर विशेष ध्यान देते हैं। आप मूर्धन्य 'ष' को 'ख' और 'ड़' को 'र' कहने के पक्षपाती हैं। एक दिन बोले— "आज कल के मनुख्य बरे दोखी होगये हैं ! मैं उनकी यह गरबरी देखकर क्यों रोख न करूं। कल मनुख्य घोरे की गारी पर चर कर सोनारपुर जा रहे थे। घोरा सरक पर सरसर दौर रहा था। गारीवान घोरे का पीटता ही गया। अन्त में घोरा बिगर गया। पौख का महीना ! इस जारे पाले में वह गारी को लेकर जलाशय में कूद परा। मुझे बरा सन्तोख हुआ।"

मुंशी जी मेरे मित्र मलीदानन्द जी के मामा हैं, इसलिये मैं भी उन्हें 'मामा' कहा करता हूँ ! जब कभी मुझे आपके गाँव

पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ है, तब आपसे बात चीत करने पर अपूर्व आनन्द उठाने का अवसर मिला है! सच बात तो यह है कि आपका व्यवहार बड़ा निष्कपट सरल और अकृत्रिम है। नेताओं की भाँति Policy तथा Tact से मिले हुए Diplomatic भाषा का प्रयोग आप करना नहीं जानते! जो हृदय में है वही ज़ुबान पर है! पता नहीं यह ग्राम-जीवन के पवित्र वातावरण के कारण है, अथवा उनका स्वभाव ही ऐसा है! कम से कम शहर में तो ऐसी सरलता देखने को नहीं मिलती! आप शहर में अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ जाइये, ऊपर से वे आपका ख़ूब सत्कार करेंगे; भीतर से जल भुन जायेंगे- -कहाँ से यह आफ़त आयी! जलपान, पान और भोजन की कैसी खपत लगी! गाँवों में यह बात नहीं। रस पनही का ही प्रबन्ध होगा, पर खुले दिल से! प्रणाम, नमस्कार, आशीर्वाद होगा, सच्चे हृदय से! शहर में "कहिये अच्छे हैं?" "सब आपकी कृपा है" ऐसे वाक्यों में आडम्बर पूर्ण सभ्यता की विषैली गन्ध भरी रहती है!

अरे यह तो मैं लेक्चर देने लग गया! कहाँ मुंशी जी के मामा और कहाँ लेक्चर! वे तो लेक्चर से बड़ा घबड़ाते हैं। संसार में उनका कथन है, लेक्चर देने से अधिक आसान कार्य और कोई नहीं है। एक पाश्चात्य विद्वान् का मत है कि लेक्चर देने में सफल होने के लिये व्याख्यान-दाता को यह चाहिये कि सभा में उपस्थित सारे समाज को मूर्ख समझ ले! तभी वह

निर्भीक होकर सुन्दरता के साथ अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर सकता है !

मुंशी जी समाज के प्राणियों को मूर्ख नहीं समझते ! या तो यह नम्रता है, अथवा इसके विरुद्ध आचरण करना उनकी योग्यता से परे है; पर कारण चाहे जो हो, वे सबको, प्राणिमात्र को अपने से अधिक बुद्धिमान् समझते हैं। यही कारण है कि वे व्याख्यान-दाता नहीं हैं और व्याख्यानों से उन्हें चिढ़ है !

एक बार, पाँच छ वर्ष पूर्व, उनके गाँव में 'स्त्री-शिक्षा प्रचारक संघ' के अध्यक्ष बाबू गिरीन्द्र चन्द्र घोष बार. एट. ला. पधारे हुए थे। गाँव में सभा हुई थी ! मुंशीजी से लोगों ने स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर भाषण करने के लिए कहा। आपने अपने हृदय में साहस और शक्ति का संचय कर निम्न लिखित वक्तृता दी—

"सभापति महोदय ! मुझसे आप लोगों ने भाखण करने को कहा है ! भाखण करना बरा कठिन है, पर फिर भी तथापि करके मैं व्याख्यान अवश्य दूँगा। यदि न दूँगा, तो आप लोग कहेंगे क्या ? यही न ? कि मुन्शी जी से भाखण करने को कहा, उन्होंने न किया ? अब इस कलंक का भागी मैं क्यों बनूँ। मेरे पिताजी से भी एक बार भाखण करने को कहा गया था। वे उसदिन अस्वस्थ थे। दो सप्ताह से रोगी रहने के पश्चात् वे मूँग की दाल का पथ्य लेकर विद्यालय में पढ़ाने आये हुए थे ! उसी दिन उनसे व्याख्यान देने को कहा गया था। वे व्याख्यान देने लगे। विषय

था "अहिंसा अच्छी है या हिंसा !" सज्जनों, वे इस विलक्षण ढंग से बोलते गये, कि उनके भाषण का विचित्र प्रभाव पड़ा। कितने लोग उस दिन से माता पिता के आज्ञाकारी हो गये, कितनी स्त्रियाँ पतियों की सच्ची सेवा करने लगीं ! सज्जनों, व्याख्यान में बड़ा प्रभाव होता है ! आप कार्य चाहे कुछ न कीजिये, केवल व्याख्यान दीजिये, देखिये आप का कैसा नाम होता है ! आजकल लोग अनेक संस्थाएँ खोल कर व्याख्यान के ही बल पर चन्दा खा खा कर मोटे हुए जा रहे हैं ! मुझे स्मरण है कि एक बार मैं रेलगाड़ी द्वारा जौनपुर से आजमगढ़ जा रहा था। गाड़ी में एक खद्दरधारी महाशय जी भी थे। वे किसी अनाथालय के मन्त्री थे ! कहते थे मैं गाजीपुर के 'गुलकन्द अनाथालय' का मन्त्री हूँ। उस आश्रम में सात बच्चे और १२ बच्चियाँ है ! तीन विधवाएँ भी हैं ! देखिये इन इन लोगों ने इतना इतना चन्दा दिया है ! कृपया आप भी देवें !" संयोगवशात् उसी गाड़ी में मैं भी सवार था ! मैंने कहा—"महाशय जी, गाजीपुर में तो कोई अनाथालय नहीं है !" पोल खुलती देख महाशय जी ने मेरे पैर पकड़े। बोले—मेरा निजी परिवार ही वह अनाथालय है ! कृपया अब तो आप शान्त रहिये। "सज्जनो, प्रातःकाल उठने से स्वास्थ्य ठीक रहता है ! जो लोग माता पिता की आज्ञा नहीं मानते उनकी बड़ी दुर्दशा होती है ! तुलसीदास जी की रामायण से बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीं है ! आजकल के समाचार पत्र पैसे के लिये निकलते हैं।

गाँवों में जो घी दूध मिलता है वह नगर में दुर्लभ है।"

मुन्शी जी ने 'स्त्री शिक्षा' के सम्बन्ध में कितनी मर्मस्पर्शी बातों से भरी उपर्युक्त वक्तृता दी! उनकी उक्त वक्तृता से गाँव के नवयुवकों में स्त्री शिक्षा के लिये अनुराग उभड़ा या नहीं, यह मैं नहीं जानता, किन्तु इस बात का ठीक पता है कि स्त्री-शिक्षा सुधारक-संघ के अध्यक्ष महोदय, मुंशी जी के इस युक्तिपूर्ण सुसम्बद्ध भाषण को सुनकर, सम्भवतः उस भाषण को 'रेकर्ड' कराने के लिये, गधे के सिर से सींग की तरह जो भागे, कि आज की मिती तक उस गाँव में न लौटे और उस दिन के बाद किसी ने मुंशी जी को भी भाषण करते नहीं सुना।

मुंशी जी को कवित्त सुनने सुनाने का बड़ा शौक़ है। आप कहा करते हैं, मैंने बचपन में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से भेंट की थी। मैंने उन्हें पद्माकर का एक कवित्त सुनाया था, जिसपर प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे एक दुशाला पुरस्कार में प्रदान किया था! उस दुशाले को आप बड़े ही जतन से रखते हैं! आपके कई एक मित्र कवि हैं। ये सब कवि-गण भी, मुंशी जी की धाक मानते हैं! मुंशी जी स्वयं भी कभी कभी कविता लिखते हैं और खूब लिखते हैं! एक बार आपको अपने ससुराल में अपने ससुर के श्राद्ध के निमंत्रण में जाना पड़ा। वहाँ आपने खूब हाथ साफ किये। मैं ऊपर कह आया हूँ कि मुंशी जी बड़े निःसंकोची प्रकृति के मनुष्य थे! मैं तो जब-जब ससुराल गया हूँ, कभी भरपेट नहीं खाया हूं। न मालूम ससुराल में अधिक

खाने की इच्छा क्यों नहीं होती ! एक अजीब प्रकार की लाज। गला घोटने लगती है। आशा है कि कोई वैज्ञानिक महोदय इस रहस्य का अनुसन्धान करके अपने कुटुम्ब और देश का मुख उज्वल करेंगे। हाँ, तो मुन्शी जी ने खाया और खूब खाया। किन्तु घर आने पर उनके पेट में भयंकर दर्द उठा। किसी प्रकार मरते मरते बचे।

एक बार मुंशी जी के पिताजी बीमार पड़े। उनकी सेवा करने के लिये मुंशी जी ने छुट्टी की अर्जी दी ! हेड मास्टर ने छुट्टी नहीं दी ! तब मुंशी जी ने यह कविता लिख कर भेजी !

रुग्ण पिता की न सेवा करूँ,
नहीं दूँ उन्हें औषध की घनी घुट्टी ॥
ऐसा न हो सकता है कभी,
मत कीजिये ऐसा, न कीजिये कुट्टी ॥
मान प्रतिष्ठा न बेंच सकूँगा,
मिलै या मिलै नहीं बीस रुपुट्टी !
कीजिये यों नहीं तंग मुझे,
अब दीजिये देव कृपाकर छुट्टी ॥

एक बार मुंशी जी के मित्रगण जगन्नाथपुरी जा रहे थे ! मुंशी जी की इच्छा हुई कि वे भी वहाँ घूम आवें ! परन्तु लाचार थे ! गृहस्थी का भारी बोझा उनके कन्धों पर निहित था ! पत्नी उनकी सदैव बीमार रहा करती है ! तीन बच्चे हैं ! बूढ़े पिता जीवित हैं ! सब के लिये द्रव्य कमाने के अतिरिक्त वे ही भोजन

भी पकाते हैं ! बेचारे बड़े चिन्तित थे । बोले—भाई चलने की इच्छा तो है, पर गृहस्थी से लाचार हूँ । मित्रों ने पूछा—"आखिर सुनें भी तो, कि क्या लाचारी है ।" मुंशी जी बोले—"अरे तुम लोग क्या जानते नहीं । पूछो परसू मिसिर सब जानते हैं ।" दुबेजी, इस गोष्ठी में सब से अधिक बुद्धिमान् और विनोदी व्यक्ति थे । बोले—कहिये मिसिर जी, मुंशीजी की लाचारी के क्या कारण हैं । ऐसी तो कोई लाचारी ही नहीं, जिसको दूर करने के लिये हम लोग उपाय न प्रकट कर सकें ।

परसू मिसिर बोले—हाँ यही देखिये, बड़े लालाजी बीमार हैं । अब ऐसे वृद्ध बीमार पिता को छोड़कर बेचारे मुंशी जी कैसे कहीं जा सकते हैं !

दुबेजी ने कहा—बस यही चिन्ता है न ? अरे लाला जी को मैं काशी के रामकृष्ण सेवा मिशन में भर्ती करा दूँगा ! वहाँ उनकी दवा भी होगी और भरण पोषण भी !

मिसिर जी—"अच्छा मुंशी जी की धर्मपत्नी जी का क्या होगा ?

"उन्हें चुनार के विधवा-आश्रम में भर्ती करा दिया जाय !"

मिसिर जी—और उनके तीनों बच्चे ?

दुबेजी—अरे अनाथालय तो नगर नगर और गाँव गाँव खुल रहे हैं, तब बच्चों की क्या चिन्ता । रहा मकान ! सो उसमें के बर्तन भाँड़े सब नीलाम करा दिये जायँ । जब मुंशी जी लौटेंगे तो फिर नये बर्तन वगैरह खरीद लिये जायेंगे ।

पता नहीं मुंशी जी को ये प्रस्ताव रुचे या नहीं, पर यह ठीक समाचार है कि वे जगन्नाथपुरी नहीं गये और फिर उन्हें किसी ने दुबे जी से कभी बात चीत करते नहीं देखा।

मुंशी जी (अर्थात् मुंशी मलीदानन्द के मामा) एक महान् आत्मा हैं ! उनका यथातथ्य वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है ! क्या कहूँ, अपना गाँव छोड़ कर, वे कहीं बाहर आते जाते ही नहीं, अन्यथा आप लोगों को उनका दर्शन कराता ! उनकी लम्बी लम्बी आँखें, और छोटे छोटे कान, तथा उनके सुरती फाँकने के अनोखे ढंग "प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण अतीत" की याद दिलाते हैं।

मुंशी जी का पूरा नाम है—मुंशी बुझावन लाल वर्म्मा, किन्तु लोक में ये "बुझन लाला" के नाम से प्रसिद्ध हैं !

समालोचक-शिरोमणि

कल शामको काशी के 'लवण भास्कर प्रेस' में स्थानीय 'सस्ता साहित्य संघ' की ओर से महाकवि तुलसीदास जी की जयन्ती मनायी गयी थी! सभापति थे भाषा-भामिनी-भर्तार पण्डित हुरबोंग उपाध्याय काव्यकेसरी! साहित्य के मनीषी लेखक और कवि, सम्पादक और टीकाकार, छात्र और अध्यापक बहुत बड़ी संख्या में स्वर्गीय महाकवि तुलसी के पुण्यस्मृति-पथ पर श्रद्धा के सुमन बिछाने के लिये एकत्रित हुए थे। कविवरों की छटा को देख कर दर्शकों ने अपने नेत्र शीतल कर डाले। कुछ कविगण अपनी मूँछ मुड़ाये और सिर पर पीछे की ओर, बाल बढ़ाये चन्द्रवदनी नायिकाओं की कमनीयता का मान-मर्दन कर रहे थे। एक ओर 'हुँसोड़' के मैनेजर बाबू प्रबोधचन्द्र बम्मी आबनूस के पिण्डे की भाँति शोभायमान हो रहे थे! आपके काले रंग के ओठों पर

पान की ललाई इस प्रकार विराज रही थी मानो तमाखू की टिकिया में आग की चिनगारी सुलग रही हो! एक कवि महोदय की कमर सब दर्शकों को अपने वास्तविक अस्तित्व के सम्बन्ध में संशय में डाल रही थी! एक ओर गजराज भी आँखों में सुरमा लगाये सिर पर दुपल्ली टोपी तथा गजराज जैसे स्थूल शरीर पर मोटा मारकीन का कुर्ता पहिने, बाबू छक्कन सिंह नागराज की तरह अविचल भाव से अवस्थित थे! यदि आप बीच बीच में खाँसते या हँसते न होते, तो यही ज्ञात होता कि भारत सरकार की ओर से प्राचीन बौद्ध काल के खण्डहरों की खुदाई में मिली हुई कोई प्रस्तर-मूर्ति ही लवणभास्कर प्रेस को पुरस्कार में प्राप्त हुई है!

हाँ तो, पण्डित हरबोंग उपाध्याय ठीक समय से साढ़े सात मिनट पूर्व ही सभा में उपस्थित हो गये।

लाला मनोहर दास के प्रस्ताव और बाबू टीकाराम के अनुमोदन पर आपने सभापति का आसन ग्रहण किया! कुछ वक्ताओं के भाषण हो चुकने के बाद आप उछल कर उठ खड़े हुए और डपट कर बोले—बस बस! बहुत हो चुका, आप लोगों ने अब तक गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा है वह प्रायः पचहत्तर फी सदी झूठ है। आप लोग बस पुरानी लकीर पीटना जानते हैं। मैं अभी हाल में गोस्वामी तुलसीदास के ननिहाल के गाँव में गया था। वहाँ से अनेक बातों की खोज की। मैं वहाँ पूरे डेढ़ दिन रहा! इतने लम्बे समय में जो कुछ नवीन अनुसन्धान कर सका, इस अपार परिश्रम से जो कुछ फल प्राप्त कर सका,

उसके कुछ बीज आपको आज प्रदान करता हूँ। आशा है कि आप सब लोग इसके लिये चिर-कृतज्ञ होंगे।

सज्जनों! इतिहासकारों ने बड़ी गड़बड़ी मचायी है! यदि इतिहासकार कान्यकुब्ज हुआ, तो उसने गोस्वामी जी को कनौजिया लिख मारा, यदि सरयूपारीण हुआ तो उन्हें सरवरिया बना डाला। आज कल कुछ लोग उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण सिद्ध करने के प्रयत्न में हैं। किन्तु बात कुछ और ही है! लोगों ने उन्हें राजपुर में उत्पन्न हुआ सिद्ध करना चाहा है! ये सब बातें मुझे तो कपोल-कल्पित ही प्रतीत होती हैं। मैंने एक 'गरुड़ रामायण' का पता लगाया है, उससे तथा अनुसन्धान द्वारा, स्वयं गोस्वामी जी की रचनाओं से, मैंने जो कुछ अन्तरंग या बहिरंग प्रमाण जुटाया है, उससे मैं जिस तथ्य पर पहुँचा हूँ, वह आप लोगों के सामने उपस्थित करता हूँ! मैंने जो इतना परिश्रम करके खोज की है, उसपर प्रसन्न होकर बम्बई की 'साहित्य संहारिणी परिषद्' ने मुझे 'खोजा' की उपाधि देकर अपने आप को गौरवान्वित करना चाहा है!

सज्जनों तुलसीदास जी हरिजन थे! यह बात विशुद्ध सत्य है। लोग चौंकेंगे। किन्तु केवल 'रामगुलाम शब्दकोष' के पृष्ठों पर दृष्टिपात करें, तो मेरे कथन की सत्यता स्वयं प्रमाणित हो जायगी, गोस्वामी जी ने रामायण के आरम्भ में ही लिखा है—"बन्दौं प्रथम महीसुर चरणा"! इसमें 'महीसुर' शब्द ध्यान देने योग्य है! 'महीसुर' वास्तव में 'मैसूर' शब्द का अपभ्रंश है। इसके

ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी मैसूर में उत्पन्न हुए थे! गोस्वामी जी ने लिखा है—"भाषा भणित मोर मति थोरी" यहाँ उदयपुर वाली रामायण की प्रति में "भाषा गणित मोरि मति थोरी" पाठ मिलता है। अर्थात् गोस्वामी जी ने लिखा है कि—"मैं हिन्दी और हिसाब में बड़ा कमजोर हूँ! सज्जनों यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। गोस्वामीजी संस्कृत के विद्वान् आचार्य थे। संस्कृत के पण्डित प्रायः अब भी ज्यादातर हिन्दी में कमजोर ही होते हैं! रहा हिसाब, उससे कविता से क्या सम्बन्ध! न मालूम लोग 'गणित' कैसे पढ़ते हैं। यह भी क्या पढ़ने की चीज है! यदि मैं शिक्षा विभाग का डाइरेक्टर बना दिया जाऊँ, तो गणित का पढ़ना पढ़ाना पहले रोक दूँ।

गोस्वामीजी बड़े अच्छे वैद्य भी थे! "बन्दौं गुरुवर पद्म-परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा। अमिय मूरिमय चूरण चारू। शमन सकल भव रुज परिवारू।" नामक चारों चौपाइयों (!) में उन्होंने अपने 'गुरुपद' और 'पद्मपराग' नामक दो रसायनों का विज्ञापन किया है। 'पद्मपराग' वाकई बड़ा अच्छा रसायन है। स्वयं पं० पद्मसिंह शर्म्मा इस दवा को बनाने की कोशिश में थे, पर न बना पाये। तब उन्होंने 'पद्मपराग' नामक एक पुस्तक लिख डाली! गोस्वामी जी कहते हैं कि मेरे ये दोनों रसायन सुन्दर जायका वाले, सुगन्ध वाले, तथा रसपूर्ण रँगीले और अनुराग बढ़ाने वाले हैं! पर आगे चल कर वे अपनी एक पेटेण्ट दवा का विज्ञापन करते हैं। वह उसका "अमिय मूरिमय"

नामक 'चूरन' है ! वे कहते हैं —"यह चूरन सुन्दर है, तथा संसार के सब रोगों को नष्ट करता है ! जिस तरह पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा की "अमृतधारा", जैसा उनके विज्ञापन से ज्ञात होता है कि, अनेक रोगों की पेटेण्ट दवा है, उसी तरह गोस्वामी जी का यह 'अमियमूरिमय' चूरन भी सब रोगों का पेटेण्ट औषध था !

सज्जनों, लक्ष्मण जी को शक्ति-मूर्छित दिखा, सुषेण वैद्य की सहायता से उनका अच्छा कराना आदि घटनाएँ गोस्वामी जी ने अपनी वैद्यक-विद्या का चमत्कार दिखलाने के विचार से ही किया है, ऐसा समझना उचित है। फिर भी हमें सन्तोष है कि गोस्वामी जी ने आज कल के विज्ञापनबाजों की तरह अतिशयोक्तिपूर्ण असत्य विज्ञापन नहीं किया। हो सकता है कि उस समय अखबार न थे और जनता इतनी मूर्ख न थी, यही इसका कारण हो, परन्तु मैं तो यही कहूँगा कि गोस्वामी जी सत्य के उपासक होने के कारण झूठी विज्ञापन-बाजी से पृथक् रह सके।

सज्जनों, गोस्वामी जी के सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ अनुसन्धान बाकी है ! आजकल अनेक एम० ए० पास व्यक्ति Research की ओर झुक पड़े हैं। वह समय शीघ्र आने वाला है जब लोग भारत के प्राचीन इतिहासाभाव के अन्धकार में घुस कर कुछ प्रकाश की रेखाएं बटोरेंगे ! विश्वविद्यालयों के अनेक होनहार छात्र रिसर्च करने पर जुट गये हैं और १२ बजे मध्याह्न से ही लालटेन लेकर कीनाराम के अखाड़े और गोरखनाथ के

टीले ऐसे साहित्यिक गढ़ों में घुसकर छानबीन करने लग गये हैं। वह समय दूर नहीं है, जब इनके अखण्ड उद्योग से यह भली भाँति प्रमाणित हो जायगा कि महर्षि वेदव्यास बंगाली थे, कालिदास की कविताओं पर मिल्टन की छाप है, तथा पाणिनि ने हैदराबाद के 'गुमनाम' गाँव में ईसा मसीह के बाद १४ वीं शताब्दी में जन्म ग्रहण किया था।

मुझे या यों कहिये कि हमें, इस बातका हार्दिक हर्ष है कि गोस्वामी जी के एक चेला, (जो उनके लिये भाँग पीसा करते थे) बाबा राघोदास की शिष्य परम्परा में, गोस्वामी भयंकराचार्य अब भी वर्तमान हैं। मुझे अपने इस अनुसन्धान में उनसे भी अमूल्य सहायता मिली है, इसके लिये वे समस्त हिन्दी संसार के धन्यवाद के महापात्र हैं! मैं उनके पास अपने अनुसन्धान के निमित्त पहुँचा। बाबाजी उस समय शयन कर रहे थे! मैं प्रायः सवा तीन घण्टे तक प्रतीक्षा करता रहा! जब उन्होंने मुझे बुलाया तो मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उनके चरण छूकर प्रणाम करने के पश्चात् मैं उनके निकट ही बैठ गया! उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी पीठ और मेरे सिर पर हाँथ फेरा और खिलखिला कर हँस पड़े! मैंने समझा, शायद मेरी कुबड़ी पीठ पर हँस रहे हैं। वे बोले—"बेटा तुम एक अजीब जन्तु से लग रहे हो! मैं गौर कर रहा था कि तुम स्त्री हो या पुरुष! तुम्हारी मूँछ मुड़ी रहने से ही मुझे ऐसा भ्रम हो गया था।"

मैंने कहा—महाराज, मैं आपके निकट कुछ साहित्यिक

अनुसन्धान करने आया हूँ। यदि कुछ बतला सकें तो बड़ी कृपा होगी!

बाबा जी बोले—हाँ, हाँ, क्यों नहीं बतलाऊँगा! श्रीधर पाठक को जानते हो न?

मैं बोला—हाँ महाराज, उनके ग्रन्थ देखे हैं। मैं उन्हें जानता हूँ।

बाबा जी बोले—वाह, तुम क्या जानो, तब तो तुम बहुत छोटे रहे होंगे। तुमने तब सत्संग कहाँ किया होगा!

फिर बोले—लाला भगवान् दीन को जानते हो न?

मैंने कहा—नहीं महाराज, उन्हें तो मैं नहीं जानता!

बाबाजी बोले—वही तो! तुम उन्हें क्या जानोगे।

तब तो तुम बच्चे रहे। कुछ सत्संग किया नहीं। अच्छा उन्हें जानते हो न? क्या उनका नाम है अच्छा सा 'हरिऔध' जी! उन्हें जानते हो न?

मैंने कहा—जी महाराज उन्हें तो मैं जानता हूँ।

बाबा जी ने प्रसन्न होकर कहा—हाँ हाँ, तुमने सत्संग किया है! तब तुम्हें साहित्यिक बातें बतलाऊँगा। मेरे एक मित्र हैं बाबू पंचानन दास। उन्होंने भी बड़ा भारी संग्रह किया है! उन्हें तुम नहीं जानते! सत्संग किया ही नहीं! वे परम साहित्यिक हैं। हजारों पुस्तकें एकत्रित कर रक्खी हैं। अनेक चित्र और क्या कहते हैं, सिक्के और टूटी-फूटी मूर्तियाँ उन्होंने संकलित कर रक्खी हैं। दो तीन हजार पुराने जूते और चिट्ठियाँ भी उन्होंने

संगृहीत कर रक्खी हैं ! अभी परसों मेरे पास एक बहुत पुरानी नरकट की कलम ले आये थे। कह रहे थे—यह कलम महाराज स्कन्दगुप्त की है ! इसे उन्होंने बाणभट्ट को प्रदान किया था, जिससे उन्होंने कादम्बरी ऐसा ग्रन्थ लिखा !

हाँ, तो कल बाबू पञ्चाननदास मेरे यहाँ इसी समय आने वाले हैं ! मैं तुम्हें उनसे मिलाऊँगा। वे बड़े चतुर विद्वान् और हाजिर जवाब हैं। एक बार वे मेरे यहाँ बैठे थे। उनके मित्र चम्पारन बाबू आये। बोले—"आज तो 'सुभा' में एक समालोचक ने आपके 'बुलबुल' नामक उपन्यास की बड़ी कड़ी आलोचना की है ! बड़ी गालियाँ दी हैं। अन्त में चलते चलाते 'उल्लू' तक लिख दिया है ! पञ्चाननदास ने सहज गम्भीर भाव से कहा—"हाँ, हस्ताक्षर करना तो आवश्यक होता ही है ! उसी स्थान पर लिख दिया होगा !"

देखी आपने पञ्चानन बाबू की हाज़िर जवाबी ! एक बार एक सज्जन ने अपनी एक पुस्तक पर इनसे सम्मति माँगी, उसपर आपने यह लिख कर भेजा—

"प्रस्तुत पुस्तक, अप्रस्तुत विषयों पर एक व्यापक निबन्ध है ! इसकी छपाई मिठाई की तरह सुन्दर और काग़ज़ मलाई की तरह चिकना है ! हिन्दी साहित्य में ही नहीं, ब्रह्माण्ड के इतिहास में यह पुस्तक बेजोड़ सिद्ध होगी ! मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तक का प्रचार चिड़िया के घोसले से लेकर सम्राट् के बकिंघम पैलेस तक, तथा गुदड़ी बाजार से लेकर ब्रिटिश म्यूज़ियम तक

हो जाय ! पुस्तक में एक त्रुटि है जो खूब खटकती है ! वह है लेखक का नाम—चन्द्रभानु शुक्ल। यह जरा असाहित्यिक है। इसमें विरोध अलंकार है। चन्द्र और भानु एक साथ नहीं दिखायी पड़ते। और यदि लिखना ही था तो पहले भानु तब चन्द्र लिखते। आशा है कि पुस्तक के दूसरे संस्करण में प्रकाशक महोदय, इस त्रुटि का सुधार कर लेखक का नाम 'भानु चन्द्र' कर देंगे।

पंचानन बाबू कितने बड़े साहित्यिक हैं, यह आप अवश्य जान गये होंगे ! इनकी भाषा बड़ी जोरदार होती है। आज कल हिन्दी के अनेक लेखक मँजी हुई भाषा नहीं लिख पाते ! इसका कारण यही है कि उन्हें लिंग का ज्ञान नहीं है। वे स्त्रीलिंग को पुल्लिंग और पुल्लिंग को स्त्रीलिंग में लिखा करते हैं। किन्तु पञ्चानन बाबू ने इसके लिये बड़ा अच्छा नियम निकाला है। उनका मत है कि जिस समय 'शब्द' से कोई 'जोर', बड़प्पन और 'तीव्रता' का ज्ञान हो उस समय उसे पुल्लिंग, और जिस समय उससे कोमलता और लघुता का बोध हो, उसे स्त्रीलिंग मानना चाहिये। जब हवा धीरे धीरे बहती है, उस समय वे कहते हैं "हवा बहती है" किन्तु जिस समय जोर की आँधी चलती है तो वे कहते हैं—"हवा बहता है"। छोटी गली को वे स्त्रीलिंग तथा बड़ी-बड़ी चौड़ी गलियों को वे पुल्लिंग ही मानते हैं। चौड़ी गली को वे 'गला' कहते हैं। एक बार उनकी गली में तीन दिन से एक बिल्ली मरी पड़ी थी। म्युनिसपल्टी की ओर से

सफाई न करायी जाने पर, उन्होंने स्वयं अफसर को लिख कर लिखा—मेरे गले में तीन रोज से एक झिल्ली भरी पड़ी है, आपने अब तक सफाया क्यों नहीं कराया ?"

पञ्चानन बाबू की इन अभूतपूर्व प्रशंसाओं को सुनकर मेरे मानस में उनके दर्शनार्थ एक महती प्रलोभना गुदगुदाहट उत्पन्न हुई। मैं बाबा जी से उनके दर्शनार्थ दूसरे दिन उपस्थित होने की प्रतिज्ञा कर घर लौटा।

दूसरे दिन निश्चित समय पर गया और बाबू पञ्चाननदास का सत्संग किया! उस सत्संग से मुझे जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है उस पर मैं किसी अन्य समय प्रकाश डालूँगा। वास्तव में पञ्चानन बाबू एक अद्वितीय मनुष्य हैं। मैं तो प्रस्ताव करूंगा कि आगामी वर्ष जब वे ४२ वर्ष के हों तो उनकी "लौह जयन्ती मनायी जाय!" मुझे खेद है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें अपना सभापति क्यों नहीं चुना? खैर सम्मेलन का सभापति चुना जाना ही, योग्यता की कसौटी नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास भी तो सम्मेलन के सभापति नहीं चुने गये थे। आप कहेंगे,—उस समय सम्मेलन था ही कहाँ! हाँ, इसे मानता हूँ, पर यदि सम्मेलन उस समय होता भी, तो भी तुलसीदास जी सम्मेलन के सभापति न चुने जाते। या तो महाराज बीरबल या श्री टोडरमल ही इसके सभापति होते! अथवा हिन्दू मुस्लिम एकता की दृष्टि से अब्दुर्रहीमखानखाना को ही सभापतित्व मिलता। ऊँह, मेरा तो ख्याल है कि यदि कुछ बुद्धिमान लोग भी

उस समय के सम्मेलन में होते और गोस्वामी जी को सभापति चुनते तो गोस्वामी जी साफ अस्वीकार कर जाते। सम्मेलन का क्या अर्थ और कार्य-गौरव रहता है, उसे वे जानते अवश्य रहे होंगे।

सज्जनों! मेरा भाषण आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया! अब आप लोग यहाँ नाहक बैठने का कष्ट न करें और घर जायँ। मैं अपना भाषण आज यहीं समाप्त करता हूँ। फिर समय मिलने पर कभी और भी इस सम्बन्ध की चर्चा करूँगा। अब आशा है कि सभा के मन्त्री महोदय मुझे तथा आये हुए सज्जनों को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित करेंगे! मुझे यह जान कर बड़ा खेद हुआ कि गोस्वामी की जयन्ती के दिन भी इस सभा के सञ्चालक अभ्यागतों के लिये जलपान का प्रबन्ध नहीं कर सके हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि आगामी अधिवेशनों को अधिक सफल बनाने तथा जनता की उपस्थिति को और भी व्यापक बनाने के लिये, सभा की सूचना के साथ ही जलपान के आयोजन की सूचना भी समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दी जाया करेगी!

मुंशी जी का ब्याह

स्थानीय 'सस्ता साहित्य संघ' में परसों मित्र मण्डली की एक साधारण बैठक थी। किन्तु बैठक बुलाई गयी थी एक असाधारण कार्य के लिये। बात यह थी कि लगभग एक सप्ताह पूर्व 'संघ' के प्रधान मन्त्री मुंशी कालिन्दी प्रसाद का विवाह हुआ था। परसों की मीटिंग उन्हें बधाई देने के लिये संयोजित की गई थी। और मुंशी जी की ओर से उस दिन मित्र मण्डली को दावत देने का भी प्रबन्ध था। मुंशी जी रहने वाले छपरा जिला के हैं, बनारस में केवल नौकरी करते हैं, इसलिये विवाह छपरा से हुआ था। हमलोगों को उन्होंने आमन्त्रित अवश्य किया था, पर हमलोगों ने इस गर्मी की हालत में बरात करना बुद्धि के साथ शत्रुता मोल लेना समझा। लोगों के रेलभाड़े में खर्च होगा, यदि वही यहाँ हमलोगों की एक शानदार दावत में व्यय हो, तो रुपये का कैसा सुन्दर

सदुपयोग हो सकेगा। और यदि मुंशीजी हमलोगों की अनुपस्थिति से जरा भी असन्तुष्ट हुए, तो उन्हें चिकनी चुपड़ी बातों से सीधे रास्ते पर ले आना भी कुछ कठिन न होगा।

आमन्त्रित व्यक्ति धीरे धीरे चले आ रहे थे। जलपान के निमन्त्रण में भी देर करके आना एक आश्चर्यजनक बात थी। जो लोग अब तक आये भी थे, वे लोग भी प्रायः संगमर्मर की मूर्ति के समान निस्पन्द भाव से बैठे थे। विवाह के उपलक्ष्य में दी गयी दावत का आयोजन और वह भी एक साहित्य संघ में हो, और वहाँ पर लोग मुहर्रम वाली रूप लेकर बैठे रहें, तो कौन आश्चर्य न करेगा?

किन्तु यह उदासीनता देर तक नहीं टिक सकी। जिस उदासीनता और निराशा ने इतनी देर से हमलोगों को दबोच रक्खा था, वह बाबू घासीराम को आते हुए देखकर ही दुम दबाकर न जाने कहाँ सरक गयी।

बाबू घासीराम ने आते ही, बिना किसी के प्रश्न की प्रतीक्षा किये बोलना प्रारम्भ किया—महाशयो, आपलोगों को हमारे कारण अब तक जलपान के परमानन्द से वञ्चित रहना पड़ा है, इसलिये मैं मान नहीं सकता कि आप लोग मुझे मन में कोसते न रहे होंगे कि "देखो घासीरमवा अब तक नहीं आया।" और यदि आपलोगों ने ऐसा किया भी हो, तो इसमें कोई अपराध और दोष नहीं। आजकल मित्रों से इसके सिवा दूसरी आशा ही क्या की जा सकती है। किन्तु इतना समझ लीजिये कि आज

मैं एक गहन गम्भीर समस्या के सुलझाने में इतना अधिक व्यस्त था कि मुझे इस दावत की याद भी नहीं रही। यहाँ तक कि, यद्यपि मैंने इस दावत में अच्छी तरह भाग लेने के लिये परसों से ही जुलाब ले रक्खा था, आज घर पर ही खाना भी खा लिया। इसलिये मुझे तो देर से आने का दण्ड यों ही मिल गया कि आप लोग अपने उदर-इञ्जन में मेरे सामने ही कोयला पानी झोकेंगे और मैं टुकुर टुकुर मुँह ताकता रहूँगा। मैं तो मुंशी जी से, अरे कहाँ है साहब, वे जो देखिये जूतों के मारे परीशान हो रहे हैं, उन्हीं के प्रबन्ध में लगे हुए हैं, अरे इधर आइये साहब, आग लगाके जमालो दूर क्यों खड़ा? मैं सचमुच आप सब सज्जनों से क्षमा माँगने और अपनी सुलझायी हुई समस्या का वृत्तान्त बतलाने चला आया था। मैंने जिस प्रश्न को हल किया है, और जिसके कारण इस वर्ष का देव-पुरस्कार मुझी को मिलना चाहिये, वह यह है कि दुनियाँ में सबसे बड़ी बात क्या है? यदि आप लोगों में से किसी को परमेश्वर ने बुद्धि दी हो, तो वह मेरे बिना बतलाये हुए, मेरे इस प्रश्न का उत्तर दे दे और मेरे हिस्से के दो कसोरे भी उदरस्थ करने की योग्यता प्रमाणित करे।

हम सब लोग एक साथ ही चिल्ला उठे—वह कौनसा प्रश्न है घासीरामजी, जरा हम लोग सुनें भी तो!

घासीराम जी बोले—वाह खूब, अभी तक आपको प्रश्न का ही पता नहीं लगा। सारी रामायण हो गयी, किन्तु अभी तक आपको यही नहीं मालूम हुआ कि दशानन के किसने मुँह

थे ? प्रश्न तो यही है कि दुनियाँ में सबसे बड़ी बात क्या है ?

चौधरी मलूकदास बोले—यह बताना क्या मुश्किल है ? दुनियाँ मे सबसे बड़ी चीज, चीन की दीवाल है ।

घासीराम जी ने कहा—अब आप अपनी मूर्खता का परिचय न दिया करें, तो बड़ा अच्छा हो ।

हाँ हाँ, और कोई सज्जन चेष्टा करें ।

बा० रूपसदराय—सहारा रेगिस्तान ।

घासीरामजी—ऊहुँक ।

"म्युनिस्पल बोर्ड की मेम्बरी ।"

"हिश !"

"कुतुब मीनार ।"

"मत बको ।"

"हरिऔध जी की दाढ़ी !"

"क्या मजाक करते हो !"

"चैम्बर्स डिक्सनरी ।"

"दिमाग मत चाटिये ।"

"अरे भाई, आखिर वह है क्या ? आप अपने हिस्से की मिठाइयाँ बाल बच्चों के लिये घर बाँध ले जाइयेगा, रूमाल न लाये हों, तो हमलोगों से माँग लीजियेगा, किन्तु अब तो यह मानकर कि हमलोग आपकी खातिर हार गये, आप ही बता दीजिये !"

बाबू घासीराम ने दुपट्टे से नाक और चश्मा साफ करते हुए कहा—क्षमा कीजियेगा, आप लोग जब उत्पन्न हुए होंगे तो

घर में सोहर हुआ होगा और बाप ने शहनाई बजवायी होगी। उन्हें क्या मालूम था कि पढ़ लिखकर भी उनके सन्तान ऐसे प्रतिभाशाली निकलेंगे कि बाबू घासीराम के एक साधारण से प्रश्न का उत्तर देने में भी बगलें झाकेंगे। अच्छा अब तो अपने पूर्वजों के पुण्य प्रताप से जो कुछ आप लोग होने को थे, वह हो चुके। इस समय यही कीजिये कि एक बार मेरे सामने अंग्रेजी वर्णमाला को दुहराइये।

बाबू झपसट राय बोले—क्यों साहब ? आप हमलोगों का अपमान करते हैं। वर्णमाला पढ़वाने चले हैं।

बाबू घासीराम कब दबने वाले थे। बोले—सीधे से यह क्यों नहीं कहते कि वर्णमाला भी भूल गयी है। कचाड़ी के बैगन क्यों हो रहे हैं ?

मुंशी कालिन्दी प्रसाद ने दोनों को हाथ जोड़कर शान्त किया। और बोले—अच्छा लीजिये बाबू घासीराम जी मैं ही वर्णमाला पढ़ता हूँ ए० बी० सी०—

"बस बस" घासीरामजी बात काटकर बीच में ही बोल उठे—सी सी मत करिये। खाली ए० बी० काफी है। अब 'ए' को भी हटाकर वहाँ एक और 'बी' की स्थापना करिये और तब पढ़िये।

मुन्शी जी—(खूब जोर से चिल्लाकर) बीबी !

चौधरी मलूकदास जो ऊँघ रहे थे चौंककर बोले—हैं यह बीबी यहाँ किसकी आयी ?

बाबू घासीराम ने उन्हें डाँटकर चुप किया और बोले—

सज्जनो, मेरे प्रश्न का उत्तर 'बीबी' है। संसार में बीबी से बढ़कर कोई नहीं है। यदि आपलोगों का अनुभव थोड़ा पड़ गया हो तो बेचारे मुंशी कालिन्दी प्रसाद से पूछ लीजिये। बीबी से बढ़कर कोई चीज नहीं है, कोई चीज नहीं है। कोई चीज नहीं है। देखिये आज से सत्रह शताब्दी पूर्व महात्मा फ़कीरदास क्या लिख गये हैं—

"माँ बीबी दोऊ खड़ीं, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी माँ की बड़ी, 'बीबी' दीन्ह बताय॥
यह तन बिष को बेलरी, नारि अमृत की खानि।
पिता तजे पत्नी मिलै, तौ भी सस्ता जान॥
सुन्दर पत्नी सब चहै, चह कुरूप नहिं कोय।
जो कुरूप पत्नी चहै, तो झगड़ा काहे होय॥
बीबी तो नइहर फिरै, आप फिरैं घर माँहिं।
मनुआँ तो सिमला फिरै, यह बिवाह है नाहिं॥
शौहर से बीबी कहै, तू क्या पीटै मोहिं।
एक दिन ऐसा आयगा, मैं पीटूँगी तोहिं॥
या दुनियाँ में आइके, छाड़ि अन्य व्यवहार।
बीबी-पद-पूजा करै, यही जगत् को सार॥
या असार संसार में, सार ससुर को धाम।
प्राप्त जहाँ से होत है, बीबी परम ललाम॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, हुआ न पण्डित कोय।
दुइ अक्षर 'बीबी' मधुर, पढ़ै सो पण्डित होय॥

अहा, कितने थोड़े से शब्दों में कितनी सच्ची और सारगर्भित बातें कही गयी है। सज्जनो! बीबियाँ भी कई तरह की होती हैं। कुछ तो अपने पति पर प्रेम से शासन करती हैं और कुछ पनहीं से। ठीक है, मुँह देखकर ही बीड़ा दिया जाता है। किसी कलियुगी सन्त ने क्या ठीक कहा है—

नो लाइफ वाइफ बिना, जानिय करि विश्वास।
गहि सो तेहि को नहि तजे, पनही सहै पचास॥
पनही सहै पचास, करै सादर पद-पूजा।
यासों बढ़ि व्रत तीर्थ जोग जप और न दूजा॥
कह कवि ढेलुआ राम, सहै सारे स्ट्राइक।
सबको यह सिद्धान्त, बिना वाइफ नो लाइफ॥

मेरे एक विश्वस्त मित्र का अनुभव है कि पढ़ी लिखी स्त्रियों से अपढ़ स्त्रियाँ ही अधिक अच्छी होती हैं। उन्होंने अपनी आकांक्षाएँ एक कविता में यों व्यक्त की है—

सुख सम्पदा देख के दूसरों की, अपने उर में कभी डाह न होवे।
सदा स्नेह सना मृदु मानस हो, खलसंगति बीच निबाह न होवे॥
बना चारु चरित्र पवित्र रहूँ, वर निन्दकों की परवाह न होवे।
मिलें मित्र कभी न छली कपटी, त्यों पढ़ी लिखी से कभी ब्याह न होवे॥

सज्जनो! उनके अन्तिम पद से मैं सहमत नहीं हूँ। पढ़ी लिखी और अपढ़ दोनों प्रकार की स्त्रियाँ अच्छी या बुरी हो सकती हैं। मेरी स्त्री यद्यपि साँवली है, फिर भी आपलोगों की गोरियों से लाख दर्जे अच्छी है। मेरे मित्र बाबू माठूराम ने

अपनी पत्नी के सौन्दर्य का क्या ही अद्भुत और रोचक वर्णन किया है, जरा उसे ध्यान-मग्न होकर सुनिये—

फूल सी फुलेल सी फुहारा सी फिटिन सी है,
फुलका सी फूली फुलीदाना की है फंकी सी।
नग सी नथी सी नालकी सी नींद सी है नयी,
नायिका नवेली नाच सी है नवटंकी सी।
ट्रेन सी टमाटर सी टी सी टमटम सी है,
टीका सी टका सी तारकोल की है टंकी सी।
छुट्टी सी छुरी सी छतरी सी छींट ऐसी छटा,
छुटी सी छँटी सी छोरी छोटी सी छटंकी सी।

सज्जनों, मैं एक तो यों ही देर करके आया, उसके ऊपर आपलोगों का इतना समय अपने वार्तालाप में ले लिया। आशा है कि आपलोग रुष्ट न होंगे। अब आपलोगों की क्षुधा जागृत हो गयी होगी। मैंने भी इतनी बकवाद इसी मतलब से की कि जिसमें किये हुए भोजन का पाचन हो जाय, और मैं भी आप लोगों का, जलपान ऐसे महत्वपूर्ण कार्य्य में, हाथ बँटा सकूँ।

महाशयो, उठिये अब जलपान में विलम्ब न कीजिये। किन्तु इस बात को स्मरण रखियेगा कि यह जलपान संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु 'बीबी' की ही बदौलत मिल रहा है. नहीं तो मुंशी कालिन्दी प्रसाद कब पार्टी देने को तैयार हो सकते थे। इसलिये मैं तो इनकी श्रीमती जी को ही, घर पर आकर, इस

उपलक्ष्य में धन्यवाद दे आऊँगा। मैं कालिन्दी प्रसाद जी को धन्यवाद का विशेष अधिकारी नहीं समझता। हाँ मुंशी जी को इस बात के लिये धन्यवाद अवश्य दिया जा सकता है कि उनकी दावत के कारण आज 'संघ' के सभी सदस्य उपस्थित हो गये है, नहीं तो बार बार बुलवाने पर भी कोरम का पूरा होना कठिन होता था। लोग आने से जी चुराते थे। किन्तु बात यह भी तो है। मन्त्री महोदय बैठक भी तो इतनी जल्दी-जल्दी बुलाते हैं जितनी जल्दी जल्दी मेरी पत्नी जी मैके जाया करती है। अस्तु यदि भविष्य में संघ का काम ठिकाने से चला, तब तो लोग यही कहेंगे कि संघ द्वारा हिन्दी साहित्य का जो कुछ जीर्णोद्धार हुआ, उसका मुख्य कारण मुंशीजी का ब्याह ही है।

बड़े मियाँ

बड़े मियाँ कहने से, अन्यत्र चाहे जिस किसी का बोध हो, हमीरपुर गाँव में शेख हबीबुल्ला का ही बोध होता है। यह बात नहीं कि उस गाँव में और कोई मुसलमान है ही नहीं। होने को तो वहाँ पचास साठ घर मुसलमान हैं, और हर एक घर में, गूलर के फल में कीड़ों की भाँति पचीस पचीस और तीस तीस प्राणी हैं और उनमें कितने ही व्यक्ति खान्दानी रईस हैं और अपने को नवाब शुजाउद्दौला का रिश्तेदार बतलाते हैं, पर गरीब होते हुए भी, समूचे गाँव में शेख हबीबुल्ला का जो आदर सम्मान है वह किसी दूसरे मुसलमान का नहीं, इसी से मुसलमान तथा अन्य जाति वाले भी इन्हीं को 'बड़े मियाँ' कहा करते हैं!

बड़े मियाँ हैं भी वाकई बड़े। लम्बाई में, वय में और तम्बाकू

पीने में उनके ऐसा दूसरा उस गाँव में, क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, कोई नहीं है। सात्विक भी वे एक नम्बर के हैं; इतनी लम्बी उम्र में माँस खाने को कौन कहे, उन्होंने लहसुन और प्याज तक हाँथ से नहीं छूआ। सभी से वे प्रेम से मिलते हैं। बच्चों से घुलमिल जाते हैं। तरह तरह के पशु-पक्षियों की बोलियाँ बोलकर लड़कों को हँसाया करते हैं। मतलब यह कि बड़े मियाँ बच्चों में बच्चे, जवानों में जवान और बूढ़ों में बूढ़े हैं। उन्हें कहानी सुनाने का भी बड़ा शौक है। जाड़े के दिनों में अपने दरवाजे पर जब वे आग तापने बैठते हैं, तो गाँव के बच्चे और बुड्ढे उन्हें घेर कर बैठ जाते हैं और वे अपनी कहानियाँ इतने प्रेम से सुनाने लगते हैं कि आधीरात बीत जाने पर भी लड़के सोने का नाम तक नहीं लेते।

बड़े मियाँ की पत्नी भी अभी जीवित हैं। उन्हें लोग बूढ़ी 'माँ' कहा करते हैं। पहिले बड़े मियाँ उन्हें 'बीबी' कहकर पुकारा करते थे। इधर दो चार वर्षों से, इस बुढ़ौती में उनके अन्दर परिहास की भावना विशेष रूप से जागी है, इसलिये वे भी अपनी पत्नी को कभी कभी बड़ी 'बूढ़ी' कह बैठते हैं। वे हसोड़े जो ठहरे! जवानी में शायरी के शौक भी रखते थे। अब भी कभी कभी दो एक गजल लिख देते हैं। जहाँ उन्होंने बीबी को बड़ी बूढ़ी कहा, वहाँ उन्होंने बड़बड़ाना प्रारम्भ किया! उस समय बड़े मियाँ इस गीत को गाकर उनका क्रोध शान्त करने की चेष्टा करते हैं—

"लड़ी बी ! बड़ा बड़बड़ाना बुरा है।

अरी बावली मैं हूँ शौहर तुम्हारा,
जिगर में घुसा फिर भी जौहर तुम्हारा।
जो बिगड़ोगी लूँगा तो क्या कर तुम्हारा,
मगर इस तरह से सताना बुरा है।
जवानी गयी, अब ढला जा रहा हूँ,
खफा तुम न हो, लो चला जा रहा हूँ।
जईफी से खुद ही जला जा रहा हूँ,
जला मत, जले को जलाना बुरा है।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस संगीतात्मक निवेदन को सुनते ही बूढ़ी माँ का बड़बड़ाना बन्द हो जाता था और वे अपना पोपला मुँह बाकर हँसने लगती थीं।

बड़े मियाँ का एक नौकर है जिसका नाम है 'घसीटा'। घसीटा के माँ बाप बचपन में ही मर गये थे, बड़े मियाँ ने ही उसका लालन पालन किया है। घसीटा की उम्र इस समय सैंतिस अड़तिस वर्ष की होगी। फिर भी उसमें लड़कों जैसी चञ्चलता पूर्ण मात्रा में विद्यमान है। बचपन में तो वह और भी शरारती था। जब वह आठ दस साल का था, उस समय एक सज्जन बड़े मियाँ की शादी के लिये उनके यहाँ तशरीफ ले आये। बड़े मियाँ की माँ ने, जो उस समय जीवित थीं, उन्हें साफ कपड़े पहिना कर नीचे भेजा।

आगत सज्जन ने बड़े मियाँ को देख कर घसीटा से पूछा-क्यों जी, मियाँ साहब यही हैं।

घसीटा बोला—"हाँ जनाब, मियाँ साहब तो बेशक यही हैं मगर पायजामा इनका नहीं बल्कि मँगनी का है।" उस वक्त तो मियाँ साहब कुछ नहीं बोले, मगर उस व्यक्ति के चले जाने के बाद उन्होंने घसीटा को खूब पीटा।

घसीटा रोते रोते बोला—ऊँ ऊं ऊँ ऊँ मियाँ जी, मुझसे गल्ती हो गयी ऊँ ऊँ ऊं ऊँ, अब आइन्दा ऐसी गल्ती ऊं ऊं ऊँ ऊँ नहीं होगी ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ।"

दो ही चार दिन बाद फिर एक और दूसरे सज्जन शादी के लिये ही तशरीफ ले आये। मियाँ साहब को देखकर उन्होंने घसीटा से पूछा—क्यों रे लड़के, मियाँ साहब यही हैं न, जिनकी शादी की गरज से हम यहाँ आये हैं ?"

घसीटा बोला—हाँ, हुजूर, मियाँ साहब यही हैं, और पायजामा भी इन्हीं का है, मँगनी का नहीं।"

आगत सज्जन के चले जाने के बाद मियाँ साहब ने घसीटा को उस दिन से भी ज्यादा पीटा और कहा "क्यों बे घसीटा, तुझे इतना पीटा, फिर भी तू रह गया घसीटा का घसीटा। अब तुझे ईंट लेकर ऐसा मारूँगा कि चींटी की तरह चलनी हो जायगा।

घसीटा आँसू गिराकर बोला—ईं ईं ईं ईं मियाँ जी ईं ईं ईं ईं इस बार माफ कीजिये मि ईं ईं ईं ईं याँ जी।"

संयोग की बात ! इसके तीन ही दिन बाद एक और हजरत लड़का देखने आये। घसीटा से पूछा—क्यों बे छोकड़े, मियाँ हबीबुल्ला यही हैं ?"

घसीटा बोला,—जी जनाब, यही हैं, और पायजामा भी अच्छा जाने दीजिये न कहूँगा, नहीं तो मियाँ साहब नाराज होकर मुझे फिर कच्चा ही चबा जाँयगे।"

(२)

घसीटा की आदतें अब भी ज्यों की त्यों है। उसके मारे मियाँ साहब की नाक में दम है। लेकिन जब इतने दिनों से, बचपन से, उसकी आदतों को वे बर्दाश्त करते आये हैं, तो अब वृद्धावस्था में वे किस तरह अलग कर सकते हैं।

घसीटा से एक सवाल कीजिये, तो चार सवालों का जवाब देता है। एक बार हमीरपुर गाँव में फौजदारी हो गयी। दारोग़ा साहब तहकीकात करने आये। उन्होंने घसीटा को [illegible] बुलवाया और उससे पूछा—क्यों बे तेरा क्या नाम है?

घसीटा बोला—हुजूर असली नाम तो मेरा फकुद्दीन है, लेकिन लोग मुझे घसीटा कहते हैं। मैं बचपन में पैर घसीटते हुए चलता था, इसी से मेरे मालिक शेख हबीबुल्ला ने मेरा ऐसा नाम रख दिया। शेख साहब अब बुड्ढे हुए मगर अब भी आप ऐसे जवानों को—

बात काटकर दारोगा साहब ने उसे खूब जोर से डाँटा—अबे, जो सवाल है, उसी का मुख्तसर में ठीक जवाब दे। इतनी तवारीख क्यों सुनाता है! अच्छा बतला परसों जब लाला दी[illegible] दास के यहाँ फौजदारी हुई तब तू कहाँ था?

दारोगा साहब को लच्छेदार उर्दू फारसी बोलते देखकर

चसीटा ने भी जिसे बड़े मित्रों के संसर्ग से साहित्यिक उर्दू बोलने का चाव हो गया था, अपनी योग्यता दिखलाते हुए कहना शुरू किया—अब हुजूर, जब आप तसवीर[1] ले ही आये हैं तो खुदा न ख्वास्ता आप यहाँ फिर भी अपने कदम लायेंगे ही। आप लाला टीमलदास से मेरे निस्बत पूछ लीजिये। वे मेरे बाप तक को जानते हैं। मेरे बाप कितने बड़े मुखन्नस[2] थे, इसे कौन नहीं जानता। जनाब उनकी बातें उनके साथ ही फरार हो गयीं, अब तो—

'दारोगा बोले—अबे ज्यादा फारसी की टाँग न तोड़। साफ ठेठ जुबान में बोल और मैं जो जो पूछूँ उसी का जवाब दे। अपने बाप का किस्सा मत सुना। और अगर अपनी आदत से बाज न आया तो तेरा सर तोड़ दूँगा। बतला जब टीमलदास को उनके छोटे भाई ने मारा तो तू कहाँ था?"

"जी हुजूर"! चसीटा बोला—"मैं था। मैं तो वहाँ रोज ही हुक्का पीने जाता हूँ, उनका दरबान मेरा बड़ा दोस्त है। वह—"

"अबे चुप!" दारोगा ने डाँटा और कसकर तीन कोड़े भी जमाये—"जितना पूछता हूँ, उतना ही बतला गधे!" टीमलदास से और उनके भाई से क्या बातें हुई थीं, जिसपर लड़ाई हुई। तूने सुना था!

पीठ सुहराते हुए और दारोगा की क्रोधपूर्ण नेत्रों से देखते हुए

---

१ तशरीफ (आगमन)। २ मुक़द्दस (पवित्र) तशरीफ के बदले तसवीर और मुक़द्दस के बदले मुखन्नस (हिजड़ा) का प्रयोग करके चसीटा ने साफ़ाई उर्दू फारसी की टाँग तोड़ दी।

घसीटा बोला—सूअर बदमाश, बदतमीज, तेरी इतनी हिम्मत कि मेरे मामले में बेजा दखल दे।

दारोगा ने हण्टर सम्हाला। कहा—गधे के बच्चे, गुस्ताखी करता है। खाल खींच लूगा। मुझे गाली देता है!

घसीटा बोला—वाह हुजूर, इसी दिमाग पर आप दारोगागिरी करते हैं। जनाब यही सब गालियाँ जो मैंने आपको बतलायी हैं, टीभलदास ने अपने भाई को दी और उन दोनों में इसी बात पर ही तो फौजदारी शुरू हुई।

घसीटा से थककर दारोगा ने अन्य गवाहों के बयान लिये और कुछ सन्दिग्ध व्यक्तियों को हिरासत में ले लिया। गुस्सा के मारे उन्होंने घसीटा को भी गिरफ्तार किया। वह दारोगा और टीभलदास को मन ही मन गाली बकता थाने में चला।

दूसरे दिन मामला जब अदालत में पेश हुआ तो, मैजिस्ट्रेट ने घसीटा को, प्रमाणों और जिरह के आधार पर निर्दोष पाया।

वे घसीटा से बोले—जा तू बेकसूर है इससे तेरा छुटकारा हो जाता है।

घसीटा खुशी के मारे नाच उठा। बोला—"या खुदा! हुजूर कितने काबिल हैं। हुजूर दारोगा हो जायँ!" मैजिस्ट्रेट समझदार थे। समझ गये कि इसे दारोगा और मजिस्ट्रेट के पद में कौन छोटा और कौन बड़ा है, इसका ज्ञान नहीं है। दारोगा ने इसे सताया है, और मैंने इससे सीधे से बातें की हैं। इससे यह समझता है कि दारोगा लोग मैजिस्ट्रेट से भी बड़े होते हैं। उन्होंने

जानबूझकर परेशान करने के कारण दारोगा से उसे दस रुपये हर्जाना भी दिलवाया। घसीटा की खुशी का क्या पूछना था।

(३)

बड़े मियाँ बड़े अच्छे हकीम भी हैं, यह तो मैं कहना ही भूल गया था। ये ही क्यों, इनके खान्दान में अब तक अनेक अच्छे अच्छे हकीम होते आये हैं। इनके परदादा हकीम लफतुल या खटमल खाँ, नवाब सिराजुद्दौला के खास हकीमों में थे। उनकी पेटेण्ट दवा थी 'जुलाब'। हर एक रोग को, चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक, ये जुलाब की गोलियों से ही अच्छा कर देते थे। अपने फन के उस्ताद थे। लोग कहा करते थे—हकीम साहब, आपकी गोलियाँ हैं तो छोटी, लेकिन जैसे खटमल बड़े-बड़े शरीर वालों के खून चूस लेता है, उसी तरह ये गोलियाँ भी रोगों के खून चूस लेती हैं। आपकी गोलियाँ सचमुच खटमल हैं।" इसी आधार पर हकीम साहब का नाम खटमल-खाँ पड़ गया, और उनका पुराना नाम लोग उसी प्रकार भूल गये जैसे आजकल के भारतीय अपनी सभ्यता को भूल गये हैं।

हाँ तो, हकीम खटमल खाँ की गोलियाँ, रोगरूपी शत्रुओं को मार डालने में बन्दूक की गोलियों से कम प्रभावशालिनी नहीं थीं। और सब औषध तो शारीरिक रोगों पर ही प्रभाव दिखलाते हैं, पर हकीम साहब की गोलियाँ मानसिक रोगों को भी उसी प्रकार उखाड़ फेंकती थीं, जिस प्रकार कर्कशा स्त्रियाँ अपने पतिदेव की मूँछ तक उखाड़ फेंकती हैं।

एक बार नवाब सिराजुद्दौला पर एक दूसरे नवाब ने हमला किया। सिराजुद्दौला ने खास खास मुसाहबों की एक कमेटी आवश्यक परामर्श के लिये बुलायी। किसी ने कहा कि सन्धि कर लेनी चाहिये, किसी ने कहा "युद्ध न करने से कायरता प्रकट होगी!" अन्ततः यह तय हुआ कि युद्ध करना ही उचित है। अब यह समस्या उत्पन्न हुई कि युद्ध में कौन से उपाय काम में लाये जायँ। किसी ने कहा—"रात में दुश्मनों की फौज पर एकाएक हमला कर देना चाहिये।" किसी ने कहा—"शत्रुओं की फौज जब किले के पास आवे तब उसपर गोलाबारी शुरू करनी चाहिए।" नवाब सब सुन रहे थे और उनके साथ ही चुप्पी साधकर ये सब बातें सुन रहे थे हकीम खटमल खाँ साहब। नवाब ने कहा—"क्यों हकीम साहब आपका दिमाग इस मामले में कुछ काम नहीं करेगा क्या? कुछ रास्ता निकालिये तो सही!

हकीम साहब ने झुककर फर्शी सलाम किया और अदब से बोले—जहाँपनाह, अगर खादिम की सलाह गौर करने के काबिल समझी जाय, तो यह भी अपनी हिकमत खिदमत में अर्ज करे। बात यह है हुजूर कि इस वक्त तोप और बन्दूक की गोलियाँ कारगर नहीं हो सकतीं, जितनी कि मेरी गोलियाँ हो।

नवाब ने आश्चर्यमिश्रित हर्ष के साथ पूछा—

साहब! जरा सुना तो जाय।"

"जहाँपनाह! हुजूर के हुक्म की पाब

बन्दा फर्ज है।" हकीम साहब ने विनी

सल्तनत की भलाई के खयाल से मैं उस वक्त अपनी बात की दुरुस्तगी साबित करना गैर-वाजिब समझता हूं। हाँ हुजूर को अख्तियार है कि अगर मेरे बतलाये हुए इस तरीके पर काम करने से फतहयाबी हासिल न हो, तो मेरी गर्दन उतरवा लें; सो हुजूर आप बेखौफ अपने सब सिपाहियों को एक एक गोली जुलाब की खिला दीजिये।"

यही किये जाने का हुक्म दिया गया। इसी बीच शत्रुपक्ष के एक गुप्तचर ने, जो वेष बदलकर पहरेदार के रूप में दरबार के फाटक पर पहरा दे रहा था, और जिसने इस सलाह मशविरे की सारी बातें सुन ली थीं, तुरन्त ही जाकर अपने मालिक नवाब से सारी बातें कहीं।

वह बोला—सिराजुद्दौला के हकीम की ऐसी की तैसी। फौरन उस हकीम के दवाखाने का पता लगाओ, और उसके पास जितनी भी गोलियाँ हों सब खरीद लाओ और अपने सिपाहियों को दस दस गोलियाँ खिला दो। देखें तब सिराजुद्दौला किस दिमाग पर फतहयाबी हासिल करता है।"

नवाब की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया और ...मी को दस गोलियाँ खानी पड़ीं। इसका क्या परि- ... आप स्वयं सोच सकते हैं। जिस समय नवाब ...से उससे गोलियाँ माँगने आया, हकीम ...याँ खाकर क्या कीजियेगा। अब जाइये ... मेरे पास गोलियाँ कहाँ हैं।"

सिपहसालार बड़ा बिगड़ा। बोला—"हकीम साहब, होश की दवा कीजिये। क्या बक रहे हैं। मालूम होता है आप दुश्मनों से घूस लेकर उनसे मिल गये हैं। अभी अभी मेरे एक जासूस ने मुझे खबर भी दी है कि दुश्मनों का कोई अफसर दस हजार रुपये लेकर आपके पास आया था। अच्छा गुस्ताखी माफ कीजियेगा; मैं बगावत के जुर्म में आपको गिरफ्तार करता हूँ।"

हकीम साहब ने गुस्से को दबाकर हँसते हुए कहा—"बेशक सिपहसालार साहब, क्यों न हो, अपनी जिम्मेदारी और ओहदे के मुताबिक ही बातें आपने की हैं। इससे मैं आपसे नाराज नहीं हूँ। मैं नवाब साहब से आपकी तरक्की के लिये शिफारिश करूँगा क्योंकि मैं इस वक्त खुद उन्हीं के पास चल रहा था, आपको नाहक ही तकलीफ करनी पड़ी।

हकीम साहब ने नवाब के पास जाकर, और उनके पैरों के पास रुपये रखकर कहा—"हुजूर, सिपहसालार साहब के कहने के मुताबिक मैंने यह रकम दुश्मनों से घूस में ली है, लिहाजा यह खजाने में जमा कर दी जाय, और इस नाफर्माबर्दार को मुनासिब सजा दी जाय।

नवाब ने ताज्जुब के साथ कहा—"यह क्या हकीम साहब! मैंने तो सुना था कि आप शराब हाथ से भी नहीं छूते। फिर ये ऊटपटाँग बातें कैसी। क्या मैं ख्वाब में भी आपकी इन बातों पर यकीन कर सकता हूँ।"

"हुजूर की इस 'किया बजा करता

है" हकीम बोले—"अच्छा अब हुजूर फौज लेकर चलें। दुश्मनों का नवाब आपके काबू में है, उसे कैदी बनावें, क्योंकि उसकी फौज इस समय बेदम सी पड़ी होगी। हमारी फौज ने अभी गोलियाँ नहीं खायी हैं। सिर्फ नुस्खा ही सुना है। उसका यह नतीजा है कि बैठे बैठे फतहयाबी नसीब हुई।" यह कहकर हकीम साहब ने सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया। नवाब खूब हंसे और हकीम साहब को अपनी ओर से बीस हजार रुपये इनाम दिये। दुश्मन मार डाले गये। उनमें लड़ने या भागने की कौन कहे, जुलाब की गोलियों के मारे खड़े होने तक कि हिम्मत नहीं थी। इस घटना से हकीम साहब की प्रसिद्धि चारो तरफ हजार गुनी बढ़ गयी।

बड़े मियाँ अपने परदादा की तरह इतने अच्छे हकीम नहीं हैं, न किसी नवाब के नौकर हैं और न वैसी अच्छी गोलियाँ ही उनके पास हैं, पर गोलियाँ उनकी भी रोगों पर कारगर होती हैं जरूर। मैंने आज तक कभी जुलाब नहीं लिया, इससे उनकी गोलियाँ कैसी हैं, इसका ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकता।

यदि किसी पाठक को आवश्यकता हो तो वह जाकर उनसे खरीद कर अनुभव कर सकता है। पैसे में बारह गोलियाँ मिलती हैं। इससे ज्यादा सस्ती दवा और कहीं भी मिलती है, इसका मुझे पता नहीं।

"बड़े मियाँ"

जो परसों पानी बरसना शुरू होने की वजह से आप नहीं सुना पाये थे, वही कहानी आज कह डालिये। कल तो हमलोग आये, मगर आप कहीं मरीज देखने चले गये थे, अब आज आपका पिण्ड नहीं छूट सकता—" यही सब कहते हुए गाँव के लड़कों ने बड़े मियाँ को घेर लिया।

जाड़े की रात थी। आठ बज चुके थे। फिर भी गाँती बाँधे और कंटोप लगाये बालकों की इस पैदल सेना ने बड़े मियाँ पर छापा मार ही दिया। वे रजाई ओढ़े आग ताप रहे थे। लड़कों के इस आक्रमण से वे जरा भी अप्रसन्न नहीं हुए, वरन् सिकन्दर के हमले का जिस प्रसन्नता से पोरस ने सामना किया था, उससे भी दूनी प्रसन्नता से बड़े मियाँ ने बच्चों का स्वागत किया और नाक पोंछते हुए (बड़े मियाँ को जुकाम हो गया था) प्रेम से बोले—अरे आओ भाई, तुम लोगों को कहानी न सुनाऊँगा, तो सुनाऊँगा किसे। खुदा की कसम मुझे जैसी खुशी इस काम से होती है, वैसी और किसी बात से नहीं। यकीन मानना, मैं यह बिल्कुल सच कह रहा हूँ। इसमें जौ भर भी बनावट या फरेब नहीं है। अब जमाना जरूर पल्टा खा चुका है। लोगों में छल कपट बहुत घुस गया है। मैं तुम्हें एक सच्ची कहानी बतलाऊँ। जवानी में मैं ढाका के नवाब साहब के साथ साथ रहा करता था। जब मुंगेर के नवाब राय बहादुर सन्तोष कुमार का इन्तकाल हो गया, तब उनकी मौतपर अफसोस जाहिर करने के लिये टाउनहाल में एक मीटिंग करने का विचार

हुआ। उस वक्त ढाका के कमिश्नर मिस्टर हेगार्ट थे। शाम को उस मजमें में वही मुखिया होने वाले थे। ढाका के नवाब साहब सवेरे उनसे मिलने गये। साथ में मैं भी गया। यहाँ नवाब साहब ने राय बहादुर की मौत पर अफसोस जाहिर करते हुए कहा—जनाब, मैं राय बहादुर की यादगारी में उनके नाम पर अपनी रियासत के उस हिन्दू ग्रेजुएट को २०००) रु० साल का एक वजीफा देना चाहता हूँ, जो विलायत जाकर खेती बारी की ऊँची लियाकत हासिल करे।

मिस्टर हेगार्ट बड़े जोर से हँसे और बोले—राय टो आपका बहुत अच्छा है, पर राय बहादुर टो बड़ा गद्दा। उसने किसी मुसलमान को कभी कुछ डान नहीं डिया और हमसे आपकी शिकायट किया करटा ठा। आप किसी हिन्दू को यह स्कॉलरशिप क्यों देना मांगटे हैं। मुझे टो राय बहादुर की मौट से कुछ ज्यादा अफसोस नहीं होने सका। पैडा होना और मरना यह टो नेचर की मामूली बाट है। अच्छा चाय टो पीजिये" यह कहकर साहब ने घण्टी बजाकर बेयरा को बुलाया और उसे चाय लाने का हुक्म दिया।"

शाम को ढाका के टाउनहाल में शहर के हिन्दुओं और मुसलमानों की जबर्दस्त मीटिंग हुई। मीरमजलिस थे मिस्टर हेगार्ट साहब। मैं भी नवाब साहब के साथ मीटिंग में गया था। वहाँ साहब ने इस ढङ्ग की स्पीच दी—"डोस्टो, आज का यह मीटिंग निहायट अफसोस और गम से भरा है। राय बहादुर साहब की

मौत से इस शहर और जिले का एक सच्चा आदमी उठ गया। मुझे तो इस बात से सख्त सदमा पहुँचा है। वे मेरे दिली दोस्त थे। मैंने उनके ऐसा नेक आदमी दूसरा नहीं देखा।" इतना कहकर साहब ने अपना रूमाल आँखों से लगाया और सबने देखा कि उनकी आँखों में से आँसू पके आम की भाँति, टपाटप टपक रहे हैं।

बच्चों! "मैं तो साहब के इस करिश्मे को देखकर दंग रह गया। यह सवेरे क्या कह रहे थे और इस समय क्या कह रहे हैं। आखिर इनकी वह बात सच्ची थी, या यह सच्ची है। खुदा की पनाह! मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाया। और सब बातें तो मुमकिन थी, लेकिन बिना दिली गम के आँखों से आँसुओं का निकलना बेशक ताज्जुब की ही बात थी।"

मगर कुछ देर सोचने पर, इस सवाल का भी जवाब हल हो गया। मुझे ख्याल आया कि कई साल पहिले मैं एक थियेटर में तमाशा देखने गया था। उसमें राजा का पार्ट मेरे एक दोस्त ने अदा किया था। राजा की रानी मर गयी। राजा रोने लगे। उनकी दाहिनी आँख से आँसुओं की नदी बह निकली। लेकिन बाईं आँख जरा भी तर न हुई। उसमें से एक बूँद आँसू भी न टपका। और लोग तो राजा की नेचुरल ऐक्टिंग पर खुशी जाहिर कर रहे थे, लेकिन मैं राजा की इस गैर नेचुरल और अजीब ऐक्टिंग पर हैरत में था। नाटक खत्म होने पर जब मैंने उससे इसके बारे में पूछा तो मेरा दोस्त बोला—यार क्या बतावें। पिपर-

सेण्ट और मिर्च की बुकनी से तर किये हुए रूमाल को मैं जल्दी में सिर्फ दाहिनी आँख में ही लगा सका था, इसी से उसी आँख से आँसू बहे। मैंने कहा—वाह, यह तो आँसू बहाने का बड़ा अच्छा तरीका है।" मेरा मित्र बोला—और नहीं तो क्या। इस तरीके का इस्तेमाल कौम के सभी बड़े बड़े 'लीडर' करते हैं। जिस समय वे हिन्दू-मुसलिम एकता या देश की गरीबी के बारे में लेक्चर देकर चन्दे की अपील करने चलते हैं, उस वक्त इसी उपाय के द्वारा उनकी आँख से गंगा यमुना की धारायें बह निकलती हैं। और अबोध और निरीह जनता पर इस नाटक का जबर्दस्त असर पड़े बिना नहीं रहता।"

"बड़े मियाँ, हम लोगों ने आप से कहानी कहने को कहा था कि लेक्चर देने को" एक युवक ने कहा,—"आप तो दुनियाँ भर का पचड़ा गाने लगे।"

बड़े मियाँ नाक पोंछते हुए बोले—बच्चो, यह कहानी नहीं तो क्या थी! देखो नाक से पानी बह रहा है। इस नाक से पानी बहने पर भी मुझे एक बात याद पड़ गयी। जिस समय मैं तुम लोगों से भी छोटा था, करीब ७ साल की उम्र थी, उस वक्त गाँव के मदरसे में पढ़ने जाता था। एक दिन मौलवी साहब ने लड़कों से कहा—बच्चों, मैं आधे जुमले में सवाल करूँगा और तुम लोग उसका दूसरे जुमले में जवाब दो।

जैसे मैं कहूँ कि 'खुदा ने हमें मुँह दिया है—तो तुम लोग कहो "बोलने के लिये" समझे न!

लड़कों ने कहा—"जी हाँ मौलवी साहब !"

इसके बाद मौलवी साहब ने कहा—"खुदा ने हमें आँखें दी हैं। लड़कों ने कहा—"देखने के लिये।"

मौलवी साहब—ईश्वर ने हमें कान दिये हैं।

लड़के बोले—सुनने के लिये।

मौलवी साहब—खुदा ने हमें नाक दी है।

लड़के एक साथ चिल्ला उठे—"पोंछने के लिये।"

बच्चों, उस समय तो मुझे वह जवाब कुछ, गैरवाजिब नहीं जँचा पर अब उसे सोचकर हँसी आने लगती है।

अच्छा, दोस्तो, अब तुम लोग घर जाओ। खाना खाकर सो जाओ जिसमें सबेरे उठकर खुली हवा में कुछ कसरत भी कर सको। बड़ी बूढ़ी माँ भी कई आवाजें दे चुकीं। अब मैं भी खाना खा लूँ, नहीं तो एक तो योंहीं सर के बाल, हिन्दुस्तान से सोना या औरतों से शर्म की तरह चले जा रहे हैं, बड़ी बूढ़ी की बदौलत, जो दो चार बाल बाकी भी हैं, वे भी न रहने पावेंगे। और मैं कुछ चन्द्रकान्ता सन्तति या अलिफ लैला तो हूँ नहीं कि एक के अन्दर एक, पातगोभी के पत्ते की तरह कहानियाँ निकलती आवें। आखिर किस्से भी तो दिमाग की ही उपज हैं न।

बाबू पञ्चाननदास का साहित्य-प्रेम

बाबू पञ्चाननदास का नाम आप लोगों ने सुना होगा और अवश्य सुना होगा। यदि आप में से किसी ने न सुना हो, तो यह उसी के भाग्य का दोष है, बाबू पञ्चाननदास का नहीं। आप विश्वास करिये, ऐसा व्यक्ति जरूर व्यतिपात योग में उत्पन्न हुआ होगा। और या तो वह खुद कुछ ऊँचा सुनता होगा, या बधिरता उसकी खान्दानी बीमारी होगी। कम से कम मेरी राय में तो ऐसा आदमी भारतवर्ष और खासकर बनारस में रहने के काबिल नहीं है। न हुआ मैं नवाब छतारी के मन्त्रिमण्डल में, नहीं तो ऐसे व्यक्ति को अण्डमन या मिर्च के टापू में जरूर ही भेज देता।

हाँ तो, बाबू पञ्चाननदास बड़े ऊँचे साहित्यिक हैं, ताड़ के पेड़ से भी। यों लम्बाई में तो वे शायद पौने तीन फीट सवा सात इञ्च से अधिक न होंगे, पर चौड़ाई में जहाँ तक मेरा ख्याल है, कुछ न कुछ, चार बरोबर ही सही, बढ़कर अवश्य होंगे। यह उनके जन्मभूमि अनुराग का ही प्रभाव है कि फिल्म कम्पनियों

के डाइरेक्टरों के बारम्बार अनुरोध करने पर भी उन्होंने बनारस नहीं छोड़ा। वे कहा भी करते हैं—"हलुआ पूरी तस्मई जब तक मिलै उधार। काशी कबहुँ न छाड़िये, विश्वनाथ दरबार।"

यों बाबा विश्वनाथ की दया से बाबू पञ्चानन दास को उधार खाने की न तो आदत है और न जरूरत ही, क्योंकि इनके पिता अपने बेटे बेटी की रक्षा की अपेक्षा, नोट और रुपये की पेटी की रक्षा करना विशेष बुद्धिमत्ता का लक्षण समझते थे, और इसी बुद्धिमत्ता के कारण ही स्वयं चमरौधा पहिन कर मर गये, पर पञ्चानन बाबू को फ्लेक्स और डासन कम्पनी का स्थायी ग्राहक बना गये।

फिर भी अन्य साधारण श्रेणी के मनुष्यों की ही भाँति बाबू पञ्चानन दास मिठाइयों से असीम अनुराग रखते हैं। शायद पिता की कृपणता के कारण उनके समय में खाने पहिनने में विशेष सुख को न उठाये रहना ही इसका कारण हो, अथवा "ब्राह्मणः मधुरः प्रियः" की भाँति साहित्यिकों और कवियों का माधुर्य्य-प्रिय स्वभाव भी इसका हेतु हो सकता है। इसीलिये तो कविगण उस कवि-सम्मेलन के आयोजन को तब तक सफल ही नहीं मानते, जब तक कि उसके कार्यक्रम में 'जलपान' का भी समावेश न हो। और पान तो पञ्चानन दास इतने प्रेम से चबाते हैं जितने प्रेम से ऊँट नीम या हाथी कैथ न चबाता होगा। आपका मुख सदैव पनडब्बा बना रहता है। मेरा विश्वास है कि यदि आपको सबेरे पौने सात बजे पान के खेत में हाँक दिया

जाय, तो सन्ध्या के सवा चार बजते बजते आप, यदि आसपास के दूसरे खेत नहीं तो कम से कम वह पूरा खेत चर कर उसे तो साफ सुथरे टेनिस कोर्ट खेलने लायक मैदान में अवश्य ही परिणत कर देंगे।

लोग बाबू पञ्चानन दास की प्रतिभा के कायल हैं। आप न केवल उच्चकोटि के गद्य लेखक हैं वरञ्च अच्छे कवि भी हैं। लोग कहा करते हैं कि कवि लोग जन्म से ही (कवि) होते हैं, कर्म या अभ्यास से नहीं। परन्तु पञ्चानन बाबू के सम्बन्ध में यह उक्ति चरितार्थ नहीं होती। आपने बड़ा ही परिश्रम किया और तब कहीं जाकर 'कवि' संज्ञा के अधिकारी हुए।

बहुत दिनों की बात है—उन दिनों की, जब कि पञ्चानन बाबू की साहित्यिक प्रतिभा नहीं चमकी थी और आजकी भाँति उनके बुद्धि-वैभव का विकास नहीं हो पाया था। काशी में एक सार्वजनिक सभा हुई। किसी खास उद्देश्य को ध्यान में रख कर लोगों ने बाबू पञ्चानन दास को ही उक्त सभा का अध्यक्ष मनोनीत किया। आपने जनता की प्रार्थना स्वीकार कर ली और सभा में गये। लोगों ने आपको अभिनन्दन-पत्र भेंट किया जिसमें आपके पवित्र आचरण और सरल स्वभाव की बड़ी प्रशंसा की गयी थी। इसके बाद सभा की निश्चित कार्यवाही प्रारम्भ हुई। अब आप ऊँघने लगे। आपके बगल बगल खड़े हुए स्वयंसेवक, आपकी ये मुद्राएँ देखकर अपनी हँसी न रोक सके और जोर से खिलखिला पड़े। तब कहीं ये चौंककर मोह-निद्रा से जागे और बड़े क्रोध से

उन बालकों को घूरने लगे। फिर क्या था। बालक लै लै जीव पराने। वक्ताओं के भाषण के बाद सभा के सञ्चालकों ने इनसे प्रार्थना की—"सभापति महोदय, अब आप भी अपने श्रीमुख से इस विषय में दो चार शब्द कहने की कृपा करें।" इतना सुनना था कि आपने उनलोगों को बड़े जोर से डाँटा—चुप रहिये, बहुत बकबक मत करिये। मेरी जब इच्छा होगी तो कहूंगा, आप कौन हुकूमत करने वाले ?"

इतना कहकर बाबू पञ्चानन दास कुर्सी पर खड़े हो गये और बोलने लगे—"सभापति महोदय ! और सज्जनों ! यह क्या, आप खीसें क्यों निपोरते हैं ? अच्छा पहिले भरपेट हँस ही लीजिये तब भाषण सुनियेगा।" इसी बीच आपके मित्र बाबू झपसटराय ने आपके कान में कहा —"यार, तुम तो खुद ही सभापति हो, फिर 'सभापति महोदय' कहकर किसे सम्बोधित कर रहे हो ?" इतना सुनते ही कि आप बाबू झपसटराय पर बेतरह बिगड़े—"अच्छा अच्छा रहने दीजिये। बड़े बुद्धिमान् बने हैं, अबतक यहाँ इतने लोगों ने इसी ढंग से भाषण किया है, तब आपकी जुबान में ताला क्यों लग गया था। मैं हजार बार 'सभापति महोदय' कहूँगा, आपके बाप का क्या ?" इतना कहकर बाबू पञ्चानन दास ने अपना भाषण पुनः प्रारम्भ किया—"सभापति महोदय, और सज्जनो ! अब दूसरा क्या विशेषण दूँ; यदि दुर्जनों कहूँगा, तो आप लोग बुरा मान जायँगे। पर बुरा मानकर मेरा कर ही क्या लेंगे। लेकिन सभ्यता के नाते मैं अपने मुँह से ऐसा न कहूँगा।

खैर, आपलोगों ने यहाँ इस मैदान में जो लगभग सवातीन घण्टे तक टांय टांय मचाया है, सो समझ रखिये कि आपलोगों की यह हरकत मुझे जरा भी पसन्द नहीं आयी। किसी को अपने यहाँ बुलाकर मिठाई पान आदि से उसका सत्कार करना चाहिये कि इस तरह सबेरे सबेरे उसके सिर पर बमा चौकड़ी मचानी चाहिये। यह तो कहिये कि मैं जरा सम्हल कर बैठा था; नहीं तो जिस ढङ्ग से आपलोग टेबुल पर हाथ पटक रहे थे, वह आप लोगों की गुण्डई ही साबित कर रहा था। सिर्फ एक बात आपलोगों ने अच्छी की है और वह है मेरा गुणगान। पर जैसा कि कहा गया है—का वर्षा जब कृषी सुखाने, आप बहुत दिनों बाद चेते। यदि मेरे चरित्र की पवित्रता का वर्णन कुछ पहले ही किये होते, तो मेरे सम्बन्ध में तरह तरह की अफवाहें सुनकर मेरे ससुर जहर खाकर मर ही क्यों जाते और मेरे पिता को उनके विरह में तीन दिन उपवास ही क्यों करना पड़ता? अच्छा अब मुझे धन्यवाद देने का भी काम चटपट कर डालिये और कृपाकर अपने-अपने घर जाइये और अपनी दूकान दौरी देखिये। अब आपलोग दूध पीते बच्चे नहीं हैं कि इधर उधर मेला तमाशा देखते फिरें। और न मुझे ही इतना समय है कि सबरे-सबरे कच्ची नींद से उठकर आऊँ और व्यर्थ की बकवास सुनूँ।

तब के बाबू पंचानन दास और अब के बाबू पंचानन दास में बड़ा अन्तर है। अब ये सभा समितियों तथा सभापति के

पद-गौरव को पहिचान चले हैं, इसलिये प्रायः सभापतित्व पाने के लिये उद्योग भी किया करते हैं। पहिले ये दुबले पतले थे और इनकी बुद्धि बहुत मोटी थी, अब ये स्वयं बहुत स्थूल होते जा रहे हैं, इसलिये इनकी बुद्धि उतनी मोटी न रही। अब ये अपने उक्त भाषण की तरह मौलिक चमत्कार नहीं प्रकट करते। फिर भी लोग इन्हें एक चमत्कारिक जीव अवश्य मानते हैं। आप हिन्दुस्तानी एकैडेमी के हिन्दी उर्दू सम्मेलन अथवा हिन्दुस्तानी भाषा के उत्पत्तिकरण का जोरदार समर्थन करते हैं। इसीलिये आप हस्ताक्षर और हस्तगत के स्थान पर दस्ताक्षर और दस्तगत तथा सभापति और प्रधानाध्यापक के बदले मजलिसपति और खासाध्यापक कहना अधिक पसन्द करते हैं।

बाबू पंचानन दास की प्रतिभा बड़ी विलक्षण और सूझ बहुत मार्के की है। आजकल आप एक दैनिक पत्र के सम्पादक हैं। आपके बहनोई बाबू गुलकन्दराय भी एक पत्र का सम्पादन करते हैं। उन्हीं के संसर्ग से और उन्हीं की प्रसिद्धि से प्रतिस्पर्धा करके बाबू पंचानन दास ने भी एक दैनिक पत्र निकाला और उसका नाम, अपने नाम का आधा हिस्सा अर्थात् 'पंच' रक्खा। पंच बनारस का बड़ा ही प्रसिद्ध पत्र है, इसीलिये मैंने पहिले ही कह दिया था कि जो लोग पत्र पढ़ने के आदी होंगे उन्हें बाबू पंचानन दास का नाम अवश्य मालूम होगा। और यह मानी हुई बात है कि इस समय अखबार पढ़ने का रोग 'कॉलेरा' और प्लेग से भी बढ़कर फैल रहा है। प्रायः लोग कहा करते हैं अमुक

देश इतना शिक्षित है कि वहाँ के कुली और मेहतर तक प्रतिदिन अखबार पढ़ते और संसार की नित्य नूतन गति विधियों से परिचित होते रहते हैं। हमारे देश भारत और नगर बनारस में भी अखबार पढ़ने की यह प्रथा जोरों से चल पड़ी है। अपने पत्र का विक्रय बढ़ाने के लिये सम्पादक लोग मोटे-मोटे शीर्षक देते हैं। जो सम्पादक जितना मोटा होता है वह उतना ही मोटा शीर्षक देता है।

बाबू पञ्चाननदास एक छोटे मोटे पूँजीपति हैं, यद्यपि पूँजीवाद के विरुद्ध अपने पत्र में कभी-कभी कालम का कालम काला किया करते हैं। 'पञ्च' में सबके ऊपर—अखबार के नाम वाले अक्षरों से भी बड़े अक्षरों में— 'सम्पादक श्री बाबू पंचानन दास जी' छपा रहता है। पश्चात् यह आदर्श वाक्य भी छपा रहता है—श्री बाबू पंचानन दास जी द्वारा सम्पादित 'पञ्च' के प्रपंच को पढ़कर पंच पंचक्रोशी का पुण्य प्राप्त करिये।"

इसी पत्र की बदौलत इस समय अपने नगर में बाबू पंचानन दास की इतनी प्रसिद्धि है जितनी भारत में टाटा या विलायत में बाटा की भी न होगी। आपने अनुभव करने के बाद ही यह कविता लिखी है—

"चाम जो चाहिये हो चिकना,
दिन रात लगाइये तेल चमेली।
धाम जो चाहिये हो अभिराम,
तो द्रिव्य उठाइये एक हवेली।

वाम जो चाहिये हो सुखदायिनी;

नित्य निवाजिये नम्र नवेली।

नाम जो चाहिये हो जग में,

तज काम निकाम, निकालिये-डेली'।

आपकी लिखी सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी बड़ी जोरदार और बड़े मार्के की होती हैं। एक बार हिन्दी-जगत् में इस बात का झगड़ा उठा कि 'राष्ट्रीय' शब्द ठीक है या 'राष्ट्रिय' और सन्धि के नियमों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शब्द बनेगा या अन्ताराष्ट्रिय। जब इस सम्बन्ध में अन्य अखबार अपने कालम काले कर चुके तो बाबू पंचानन दास के 'पंच' में भी निम्नलिखित टिप्पणी दिखलायी पड़ी—

"राष्ट्रिय" शब्द को लेकर इस समय हिन्दी के लेखक मुर्गों की तरह लड़ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि आजकल शायद भाँग का भाव कुछ गिर गया है और इसी से यह 'उन्मादवाद' जोर पकड़ रहा है। मेरी राय में तो 'राष्ट्रिय' शब्द को हिन्दी कोष से उसी प्रकार निकाल देना चाहिये, जिस तरह हिटलर ने यहूदियों को निकाल दिया अथवा जिस प्रकार वेश्याएँ धनहीन प्रेमियों को निकाल बाहर करती हैं। मुझे तो लड़ने वाले साहबान की बुद्धि पर तरस आती है। इस शब्द के कारण हिन्दू जाति का बड़ा अपमान हो रहा है। देश की सब से बड़ी राजनीतिक संस्था का नाम 'राष्ट्रिय महासभा' रखकर लोगों ने अपने कलुषित हृदय का अथवा संस्कृत भाषा के आधार पर चलने वाली हिन्दी के सम्यक्

ज्ञान के अभाव का ही परिचय दिया है। 'राष्ट्रिय' का अर्थ होता है राजा का साला। राजश्यालस्तु राष्ट्रीयः (देखो अमरकोष)। मैं नहीं चाहता कि हमारी संस्था को लोग 'राजा के सालों की महासभा' कहकर उसका मजाक उड़ावें।"

इसी प्रकार एक बार और आपने एक टिप्पणी लिखी—आज-कल लोग ठीक तौर से अपने सन्तानों का नामकरण भी नहीं कर पाते। मध्यकालीन भारत के बाद से ही लोगों में यह अज्ञान फैला जान पड़ता है। उस समय से लोगों के नामों में रिश्ते-दारी सूचक शब्द लगाये जाने लगे। उदाहरण के लिये दादा भाई नौरोजी जैसे नाम मिलते हैं। इसमें दादा और 'भाई' ये दो सम्बन्ध वाचक शब्द जुड़े हैं, जैसे कभी किसी रेलवे ट्रेन के आगे और पीछे, इस तरह दो इञ्जन जुड़े रहते हैं। परन्तु अब कहीं कहीं एक ही रिश्ताबोधक शब्द काफी समझा जाने लगा है, जैसे भाई परमानन्द और काका कालेलकर, ये दो नाम इसके ज्वलन्त उदा-हरण हैं। इन दो स्वनामधन्य प्रसिद्ध नेताओं का पदानुसरण करते हुए यदि जनसाधारण भी चलें तो देश का बड़ा उपकार हो। सम्पादक का काम भी किसी नेता के पितामह से कम नहीं होता, इसलिये अब आज से मैं अपने नाम के आगे जीजा, शब्द का प्रयोग करूँगा। 'पत्र' के पाठकों को चाहिये कि अब से पत्रव्यव-हार करते समय मुझे जीजा पञ्चानन दास लिखना न भूलें, अन्यथा उनके पत्रों का उत्तर न देने के लिये कार्यालय जिम्मेदार न होगा!

कभी कभी तो आप कविता में ही टिप्पणियाँ ।... प्रेम-पत्र हैं। देव पुरस्कार का झगड़ा छिड़ा हुआ था। हिन्दी के द्वीप... कि कवि श्री दुलारे लाल भार्गव ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दुस्तानी लोग भी दौड़ धूप करना जानते हैं। कवि सम्राट काव्यकानन में लेटे हुए "टूटे नखरद केहरी, वह बल गयो थकाय" का पाठ ही करते करते ठेठ हिन्दी के ठाठ पर रह गये और भार्गव जी ने बाजी मारकर अपने को बाजी से भी तीव्र सिद्ध कर दिया। उस समय प्रायः अनेक पत्रों ने पं० दुलारेलाल भार्गव को बधाइयाँ दी थीं, पर उनमें वे सब काशी की गौनहारिनों से अधिक कला का परिचय न दे सके। बेशक यदि चमत्कारपूर्ण टिप्पणी कोई हुई तो वह बाबू पञ्चाननदास की ही। आपने टिप्पणी के स्थान पर सिर्फ यह घनाक्षरी लिखी—

कवि जलपान पर, बीबियाँ दुकान पर,
इक्केवान पै ज्यों कांस्टेबुल को लेखिये।
लकड़ी अङ्गार पर, हसी जैसे प्यार पर,
अर्थ-क्वेक भार ज्यों बिहार पै बिसेखिये॥
मक्खियाँ मिठाई पर, सोख्ता रोशनाई पर,
लीडरों पै प्रेस प्रतिनिधियों को पेखिये।
कार पर लंप जैसे भाव पर पंच,
तैसे देव पुरस्कार पै दुलारे लाल देखिये॥

कहना न होगा कि आपकी इन्हीं सब विशेषताओं के कारण बाबू पंचानन दास से 'पंच' की लोकप्रियता बहुत बढ़ा दी है।

उनकी कला यदि किसी के सामने फख मारती है, तो वे इनके प्रेस के कम्पोजीटर लोग है। वे सब भाषा में मनमाना पाठान्तर करने में आधुनिक टीकाकारों से भी बढ़े चढ़े हैं। एक प्रसिद्ध संगीत-वेत्ता की मृत्यु पर उन्होंने यह टिप्पणी लिखी—वे संगीत के अनुपम ज्ञाता थे। उनका गौरव महान् था और जानकारों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कम्पोजीटरों की कृपा से इसके बदले यह छप गया—वे संगीत के अनुपम जाँता थे। उनका गोबर महान् था और जानवरों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।"

(२)

पञ्चानन बाबू संसार में यदि किसी से दबते हैं तो अपनी श्रीमतीजी से ही। उन्होंने अपनी श्रीमतीजी के प्रति यह कविता लिखी है—

× "ताली जिमि ताले पर, गोरे जिमि काले पर
डाक्टर मरीज पर, जैसे बलवान है।
हाकिम ज्यों परजा पर, मॉनीटर दरजा पर,
मीटर ज्यों पाइप के ऊपर प्रधान है।
छायावाद छन्दों पर, लीडर ज्यों चन्दों पर,
बन्दरों पे जैसे म्युनिस्पैलिटी प्रमान है।
मियाँ बाजा-सुर पै, दमाद ज्यों ससुर पै है,
तैसे तुम मुझ पै ज्यों चीन पै जपान है।

बाबू पंचाननदास अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते हैं। किन्तु यह कहना शायद कठिन होगा कि मिठाइयों को वह अधिक प्यार करते हैं या अपनी पत्नी को। एक बार आप सन्ध्या समय

छत पर बैठे हुए अपनी पत्नी को बड़ी तन्मयतापूर्वक एक प्रेम-पत्र लिख रहे थे। आप लिखना प्रायः समाप्त कर चुके थे जब कि घोंसले की ओर लौटती हुई एक चील ने आपके पत्र पर बीट कर दिया। आप उस चील पर बेतरह बिगड़े और मनही मन बड़बड़ाने लगे—ससुरी यदि पास में होती, तो तेरी आँख में कलम घुसेड़ देता।" बड़बड़ाहट और झुँझलाहट के झोंक में ही, वे उक्त वाक्य को अपने पत्र में लिख गये, इसका उन्हें पता ही नहीं। चिट्ठी जब पंचानन बाबू के ससुराल पहुँची, उस समय आपकी पत्नी विमला की सखी चम्पा भी वहीं बैठी थीं। दोनों सखियों में बहुत पटती थी और कोई पर्दा न था। इसलिये चम्पा ने ही वह पत्र लेकर विमला को सुनाना प्रारम्भ किया—

प्राणाधिके विमले,

सौभाग्यवती भव।

तुम्हारा कोई पत्र न मिलने से हृदय 'स्टोव' की भाँति सुलग रहा है। इस जाड़े की रात में कलेजा रह रहकर कुत्ते की दुम की तरह काँपने लगता है। तुम्हारे वियोग में रातभर दाँत इस प्रकार खटखट बोलने लगते हैं, मानों मेरा मुहर्रिर टाइपराइटर पर कोई लेख टाइप कर रहा हो। प्रिये, तुम्हारी बातें लखनउआ खरबूजे से भी अधिक मीठी और लँगड़े आम से भी बढ़कर तृप्तिकर होती थीं। गर्मी के उन कठोर दिनों में, तुम्हारे दर्शन से मेरे हृदय को जैसी शीतलता पहुँचती थी, वैसी दस बारह मलाई की कुल्फियाँ खाने पर भी न पहुँचती। चाकिया के

गुलाब जामुन की भाँति तुम्हारे नयनों की काली पुतलियाँ, रसगुल्ला की तरह तुम्हारे कोमल कपोल, इमिरती के समान तुम्हारे कान, और गुझिया के समान तुम्हारे मधुर अधर मेरे हृदय को इस समय रह रहकर मथे डालते हैं।

आह प्रिये इस समय तो—

जिगर यह बावला है और मैं हूँ।
मुरब्बा आँवला है और मैं हूँ।
पड़ा है मेज पर चम्मच किनारे,
सुराही है घड़ा है और मैं हूँ॥

× × ×

तुम्हारा साँकड़ा है और मैं हूँ।
समोसा सब सड़ा है और मैं हूँ॥
जो देखा टार्च लेकर बिस्तरे को,
वहीं खटमल पड़ा है और मैं हूँ॥

आखिर तुम कब आओगी? मैं नहीं समझता कि तुम वहाँ रहकर भारत की कौन सी समस्या हल कर रही हो। इस समय तो चली आओ, फिर चाहे दो एक सप्ताह में चली जाना। सखुरी इस समय अगर पास में होती तो तेरी आँख में कलम घुसेड़ देता××××।

विमला ने झपट कर पत्र छीन लिया और बोली—हैं, यह कैसी शरारत! क्या भाँग पीकर तो लिखने नहीं बैठे थे। चम्पा बोली—"बहन अभी तो तीन पन्ने बाकी हैं, आगे नहीं मालूम

क्या क्या उनके हैं, जरा पढ़ने तो दो। आखिर तो पंचानन बाबू साहित्यिक ठहरे। पत्र क्या लिखते हैं मानो कोई खण्ड काव्य।

विमला बोली—अरी चम्पा, चम्पू[1] क्यों नहीं कहती। अच्छा अब इस वक्त तो रहने दे। इस समय तो इस वाक्य ने सब रस ही भंग कर दिया। फिर कभी पढ़ूँगी और अब उन्हें यही सजा दूँगी कि इस बार जाड़े में तो उनके पास नहीं ही जाऊँगी।

पंचानन बाबू की विमला उनके पास जाड़े में आयी या नहीं, आने पर दम्पति में कैसी छनी, पंचानन बाबू ने कलम घुसेड़ा या नहीं—इसका उन्होंने अब तक मुझी से वृत्तान्त नहीं कहा, तो मैं आप लोगों को कैसे बतला सकता हूँ।

---

१ गद्य और पद्यमय काव्य को चम्पू कहते हैं। 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते'।

टालमटोल

राय मनोहरदयाल भी विचित्र आदमी हैं। शहर में ऐसा कोई नहीं जो उनकी एक प्रसिद्ध विशेषता से पूर्ण परिचित न हो। बात यह है कि वे कभी भी कोई काम ठीक समय पर नहीं कर पाते। सदा टालमटोल ही किया करते हैं।

राय मनोहरदयाल ने कभी किसी से "नहीं" न की। 'हाँ' तो उनकी ज़बान पर मानो रक्खा सा रहता है।

मुझे तो उन्हें देखकर ऐसी ही प्रसन्नता होती है मानो सम्पाती को पर मिला हो, किसी राजभक्त को 'सर' मिला हो, किसी हिन्दू कन्या को अच्छा घर और वर मिला हो, गवर्नमेण्ट को कोई चतुर चर मिला हो, दाल को 'अमहर' मिला हो, किसी नारी को नैहर मिला हो या किसी दूकानदार को आर्डर मिला हो।

यद्यपि राय मनोहरदयाल में उदारता की मात्रा उतनी ही है जितनी भारत में स्वराज्य या रूस में भीतरी शान्ति की। फिर

भी उनके लिए 'हाँ' कहना उतना ही आवश्यक है जितना कि नेता कहलाने के लिए जमींदारी प्रथा का विरोध करना।

जितना प्रेम गाँधीजी को चर्खे की कताई से, पन्तजी को बजट की कार्रवाई से, अंग्रेजों को भारत की भलाई से, लीडरों को किसानों की रहनुमाई से, मुस्लिम लीग को मिस्टर जिन्ना की बावफाई से, पण्डितों को पुजहाई से, महन्थों को मलाई से, बीड़ी वालों को दियासलाई से, पश्चिमीय सभ्यता को नेकटाई से, उत्सव को शहनाई से, मरीज को चारपाई से, तथा गधों को मुटाई से है, उतना ही प्रेम राय मनोहरदयाल को अपनी प्रेयसी मुन्ना बाई से है।

उसी की आँखों से वे देखते तथा उसी के कानों से वे सुनते हैं। अन्यथा वह जिस बात का समर्थन न करे, तो फिर टालमटोल तो है ही!

अब तक पब्लिक के किसी भी कार्य्य में किसी ने इन्हें एक पैसा चन्दा देते न देखा होगा। बड़े से बड़े लीडर भी इनके मन को उसी प्रकार न हिला सके, जिस प्रकार अंगद के चरण को राक्षस या मिस्टर जिन्ना को गाँन्धी जी!

राय मनोहरदयाल मेरे मित्रों में हैं। पर पन्द्रह वर्ष के इस लम्बे परिचय में भी, इन्होंने मुझसे दो बीड़े पान खाने की भी प्रार्थना न की होगी। साथ ही यदि इन्हें कोई व्यक्ति पान खिलावे तो ये स्वयं भी न खायँ। कहते हैं 'न ऊधो का लेना, न माधो को देना।' ये न किसी को निमन्त्रित करें, न किसी के यहाँ स्वयं ही जायँ। एक बार मैंने अपने यहाँ कवि सम्मेलन तथा जलपान में

इन्हें बुलाया था, पर ये न आये। हाँ इनका नौकर यह पत्र लेकर मेरे पास आया—

प्रिय 'कमनीय' जी,

निम्नांकित कारणों से मैं आपके घर आने का कष्ट करना नहीं चाहता। आप विचार करेंगे तो उसे अपने लिए भी श्रेयस्कर ही पायेंगे।

(१) इण्टर क्लास का किराया लेकर भी आप थर्ड क्लास में ही आये होंगे। इस रीति से कठिनाई से दो या तीन रुपये बचा पाये होंगे। वह आपके ही स्वार्थ में लगे यह मेरी सद्भावना है। आप उसकी मलाई पूरी खाते तो अधिक अच्छा था। मैं आपका पुराना हितैषी हूँ अतः मेरी यही इच्छा है कि स्वयं उपस्थित होकर हिस्सा न बटाऊँ।

(२) दूसरों का न्यौता तो आप स्वयं बाँटे और आपका न्योता कोई दूसरा। इसमें षड्यन्त्र की गन्ध है। निमन्त्रण जाली मालूम पड़ता है।

(३) आपका भाई निमन्त्रण दे गया था, जो आपका पुराना विद्वेषी है। क्या आश्चर्य कि उसने आपकी हँसी उड़ाने के लिए झूठा न्यौता दिया हो।

(४) आपकी हस्तरेखा और कुण्डली बतलाती है कि आपकी सब व्यवस्था ऊटपटांग ही रहा करती है। क्या आप सचमुच जलपान करावेंगे।

अस्तु मैं आऊँगा तो नहीं, पर स्वीकृति-पत्र पर हस्ताक्षर अवश्य कर देता हूँ।

मुझे राय मनोहरदयाल के इस टालमटोल से इतनी ग्लानि हुई कि मैंने उनको एक बार छकाने का निश्चय कर लिया। एक षड्यन्त्र रचा गया जिसमें मुहल्ले के पाँच छः व्यक्ति सम्मिलित थे।

एक दिन हम लोगों ने कुछ शहनाई वाले, कुछ गौनिहारिन तथा कुछ मजदूर ठीक कर दिये। साथ ही राय मनोहरदयाल के नाम से इस आशय का निमन्त्रण पत्र भी छपवा कर बँटवा दिया गया कि आज मेरी ३७ वीं वर्ष गाँठ है, आप कृपया बन्धु-बान्धवों सहित पधारें। नगर के रईसों तथा अधिकारियों के यहाँ निमन्त्रण पहुँचवा दिया गया। समय ठीक ४ बजे सन्ध्या का था। ज्योंही आमन्त्रित लोग पहुँचने लगे त्योंही शहनाई और गौनिहारिनों के साथ मजदूरे भी मिठाई लेकर पहुँच गये।

पहिले दो एक आदमियों को आते देख कर राय मनोहर-दयाल ने समझा कि ये लोग किसी निजी काम से आये होंगे पर जब दरवाजे पर पचासों मोटरें आ विराजीं और शहनाई बजने लगी तो इनकी घबड़ाहट का ठिकाना न था। इन्होंने एक मजदूर से डपट कर पूछा—क्यों रे यह सब सामान कहाँ से ले आया है?

मजदूर ने, सिखा सिखाया होने के कारण तुरन्त उत्तर दिया—हुजूर भुम्रा बाई ने तो आप की वर्ष गाँठ की खुशी में यह सब भेजा है।

कहना न होगा कि उसने रईसों और हाकिमों के सामने

रायसाहब कितने लज्जित हुए। किस प्रकार पूरी दावत की व्यवस्था उन्हें करनी पड़ी यह भी स्पष्ट ही है। जब लोग दरवाजे पर आ विराजे तो उन्हें खिलाना ही पड़ा। वे रह रहकर मन-ही-मन कुढ़ते और दाँत पीसते थे। षड्यन्त्र का पता लगाने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया। पर पूरे सप्ताह भर के परिश्रम के बाद भी वे कृतकार्य न हो सके।

हाँ, आठवें रोज उन्हें हम लोगों का एक पत्र, और साथ में २००) का नोट मिला।

पत्र में लिखा था—

प्रिय रायसाहब,

वर्षगाँठ में न आ सकने के कारण हमलोग दुःखी हैं। यह षड्यन्त्र हमी लोगों के मस्तिष्क की थी। आशा है कि क्षमा करेंगे। आपका जो २००) रु० उस रोज व्यय हुआ, उसे हमलोग चन्दा द्वारा एकत्र कर भेज रहे हैं।

भवदीय—
महाकवि कमनीय
श्यामदास लोहिया इत्यादि

आज सात रोज के पश्चात् कहीं जाकर रायसाहब को पत्र पढ़कर सन्तोष हुआ और वे दिल खोल कर हँसे। पर रुपया लौटाने में उन्होंने टालमटोल नहीं की। अब प्रायः वे दोस्तों से पान पत्ता का भी व्यवहार करने लग गये हैं। मेरे घर भी उन्होंने इस बार दो रुपये का लँगड़ा आम भेजा है।

ड्राइवर की भूल

भूल साहब किससे नहीं होती ! ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं जिसने एक या अनेक बार कोई भूल न की हो। या सम्भव है कि भूल करने की दुर्बलता को स्वाभाविक और उचित सिद्ध करने के लिए ही मनुष्य जाति ने To Err is human सदृश कहावतों का निर्माण कर रक्खा हो। पर बात यह है कि किसी किसी की भूल अच्छी और प्रिय लगती है, तो किसी की बहुत ही अवाञ्छनीय।

अपने घर की बात का वर्णन करना यदि पर्दा-प्रथा के विरुद्ध न होता तो मैं कुछ बतलाता भी। संकेतमात्र कर देता हूँ। एक दिन श्रीमती जी ने तरकारी में गरम मसाले के स्थान पर सोंठ की बुकनी छोड़ दी थी। स्वाद में विचित्रता का अनुभव होने पर भी उनसे पूछने का साहस न पड़ता था "क्या आपने तरकारी पकाने की नवीन वैज्ञानिक प्रणाली का आविष्कार कर तो नहीं लिया ? कहना न होगा कि उस तरकारी के कारण दिन भर मेरी

हृत्तन्त्री के तार झंकृत होते रहे और मैं अपनी मूक वेदना को उसी प्रकार छिपाये रहा जिस प्रकार राजाओं के किले में किसी उच्च अधिकारी अफसर के आने पर बहुमूल्य पदार्थ हटा कर छिपा दिये जाते हैं।

एक बार मेरे ड्राइवर ने एक ऐसी भूल की थी जिसका फल याद करके मैं आज भी काँप उठता हूँ। वह भूल इस बात की नहीं थी जैसी कि अभी उस रोज एक ड्राइवर की भूल से 'कार' पटरीपर जा चढ़ी और पाँच आदमी बुरी तरह घायल हुए। मेरे ड्राइवर ने जो भूल की थी वह दूसरे ही प्रकार की थी!

विवाह हाल में ही हुआ था। ससुराल वाले थे तो फतेहपुर के, पर रह रहे थे प्रयाग में। ब्याह के समय मैं बहुत ठाठ बाट से रहता था। पर पटना आकर मेरी भेंट एक वेदान्ती संन्यासी से हुई और डाक्टरी के साथ-ही-साथ मैं वेदान्त की ओर भी झुका। फल यह हुआ कि इन परस्पर विरोधी शिक्षाओं के संघर्ष में पड़ कर मेरा स्वास्थ्य भी कुछ शिथिल हो गया और मैं फैशन से उदासीन होकर तपस्वियों का सा जीवन व्यतीत करने लगा। मूँछ दाढ़ी के बाल बढ़ गये। कपड़े वही पञ्जाबी कुर्ता और दुपट्टा।

घर का लखपती होते हुए भी सन्यासी जी के प्रभाव से मैं उदासीन सा हो गया। स्वयं मैं डाक्टरी का छात्र, और हो गया बीमार सा।

मैं कह चुका हूँ कि मेरे ससुराल वाले प्रयाग में रहते थे। उन्हें मेरे विचारों की आहट लगी। उन्होंने मुझे सुरक्षित तथा

गृह-जालमें कैद रखने के विचार से प्रयाग आने को तार दे दिया।

मैं जिस समय प्रयाग स्टेशन पहुँचा, उस समय रात हो रही थी और मूसलधार पानी बरस रहा था। स्टेशन उतर कर मैंने प्लेट फार्म पर तथा आसपास देखा कि कोई 'रिसीव' करने आया है या नहीं। जब मुझे कोई न दिखलाई पड़ा तो मैं बाहर मैदान में मोटर स्टैण्ड के पास पहुँचा। किराये की टैक्सियाँ खड़ी थीं। मैंने एक ड्राइवर से कहा बा० निर्मल सहाय का मकान जानते हो।

"हाँ हुजूर क्यों नहीं" कहकर ड्राइवर ने अपना किराया बतला कर मेरा सामान लाद लिया। कुली को पैसे देकर मैं चल पड़ा।

थोड़ी ही देर में टैक्सी बा० निर्मल सहाय के घर पहुँच गयी। बाबू साहब घर में नहीं थे। उनका ६ या ७ वर्ष का बालक बैठक में आया। मालूम हुआ कि मेरा साला अर्थात् बा० निर्मल सहाय का छोटा पुत्र है! मैं विवाह में जब फतेहपुर गया था, तब इतना लज्जाशील था कि उससे परिचय न हो सका। उससे मालूम हुआ कि उसका नाम श्यामू है। मैंने उससे कहा—श्यामू, घर में जाकर कह दे कि जीजा जी आ गये हैं।

श्यामू दौड़ता हुआ घर में गया और संवाद कह दिया। भीतर औरतों ने जगह करा कर, मुझे जलपान के लिए बुलवाया। मेरी श्रीमती जी (राम राम मेरी क्यों) एक कमरे में छिप गयीं। केवल बूढ़ी सास थीं जो घूँघट काढ़कर एक ओर बैठ गयीं। मैंने जाकर उनके पैर छुए। उन्होंने शुद्ध हृदय से आशीर्वाद दिया।

कुशल प्रश्न पूछने लगीं। मैं यथासाध्य संक्षेप में उत्तर देता गया। उन्होंने जलपान करने का आग्रह किया। मैं लजाते सकुचाते गुलाब जामुन हाँथ से उठाने जा ही रहा था कि इतने में मेरे (!) श्वसुर आ पहुँचे। दस मिनट तक तो वे मेरी ओर एक टक ताकते रहे फिर समीप आकर हाथ पकड़ कर बोले—बोल तू कौन है। यहाँ क्यों आया। नहीं अभी पुलिस में देता हूँ।

मेरे तो होश हवाश गुम हो रहे। बूढ़ी माँ ने भी घूँघट खिसका कर जो देखा तो सर पीटने लगीं। मैं बड़ा चकराया। बोला—महाशय, क्या दामाद का इसी प्रकार सत्कार किया जाता है? गृह स्वामी डपट कर बोले—चुप सूअर, क्या बकता है। जेल जायगा तब दामाद का सत्कार देखेगा। अरे कौन है मोहना! यह कह कर गृह स्वामी ने मेरा कान पकड़ा और खींच कर मकान के बाहर ले आये।

कितना भी वेदान्त पढ़े था, था तो क्षत्रिय कुमार ही न। सहने की भी सीमा होती है। बाहर आते ही मैंने कस कर उन्हें एक घूँसा रसीद किया। नाक से खून गिरने लगा। मैंने सोचा बेचारा मर जायगा। कुछ भी तो कारण होगा। या तो पहिचानता नहीं है, या इसका दिमाग ही सनक गया है। यह सोचकर मैंने पाकेट में से एक शीशी दवा खून बन्द करने के लिये निकाली। उसने क्या सोचा कि मैं उसे जहर देने जा रहा हूँ।

वह जोर से चिल्ला उठा—बा० निर्मलसहाय जी, दौड़िये। डाकू मुझे मारे डाल रहा है।

जब तक मैं चौंक कर पीछे हटूँ, तब तक पीछे से एक लम्ब तडंग आदमी ने मेरी कमर पकड़ कर पीठ में दो घूँसे लगाये ही तो। यह शायद बगल के बँगले से निकला था। पर मेरा मुँह ज्यों ही उसकी ओर घूमा, कुछ वह भी झिझका, और कुछ मैं भी। तब तक उसी बगल वाले—बँगले के छतपर से एक बालिका चिल्ला उठी—अरे ये तो जीजा जी हैं।

इसी समय मेरे छोटे साले साहब स्टेशन से कार लेकर वापस आ गये। इन्होंने मेरे सामने ही अपने पिताजी से (जिन्होंने अभी-अभी मेरी पीठ पर दो घूँसे जमाये थे) कहा—जीजा जी तो नहीं आये। मालूम होता है ट्रेन छूट गयी।

"पैर छूओ," जीजा जी क्या सामने खड़े हैं, मेरे ससुर साहब ने झेंपते हुए कहा।

मामला सब की समझ में शीघ्र ही आ गया। ड्राइवर भूल से मुझे बगल वाले मकान में उतार गया था। साले ने मेरी लम्बी दाढ़ी तथा दुर्बलता की वजह से मुझे नहीं पहचाना था। मैंने भी एक बार का ही परिचय होने से उन्हें पहिचानने में गल्ती की थी। साली बोली—तुम बार-बार कन्धा जो हिलाया करते हो, इसी से मैं तुम्हें खट से पहिचान गयी।

और सब लोग तो चुप रहे। श्रीमती जी ने मेरा मजाक उड़ाते हुए कहा—तुमसे कितनी बड़ी भूल हुई। पर मैंने कहा और अब भी कहता हूँ कि यह ड्राइवर की भूल थी।

गाबड़ागिल्ला प्राच्यपरिषद्

श्रीमती मीनाक्षी चट्टोपाध्याय का नाम तो आपने सुना ही होगा। अरे वही जो मलदहिया की तिरमुहानी पर लम्बा चौड़ा, सुरसा के मुँह के समान पौने दो फर्लाङ्ग का बगीचा है, वह उन्हीं का तो है। उसी में वे प्रति सप्ताह अपने इष्ट मित्रों को चायपानी से सन्तुष्ट किया करती हैं। और इसी चायपानी, भोजभात की ही बदौलत तो 'चटर्जी विला' का इतना नाम शहर भर में व्याप्त हो रहा है। उसी 'विला' के दूसरे भाग में, एक छोटी सी कोठरी में श्रीमती मीनाक्षी के पति श्रीयुत लम्बकर्ण चटर्जी भी एकान्त-वास-सा किया करते हैं। ताँगेवालों कुलियों तथा खानसामों की दुनियाँ ने उक्त 'च्याटर्जी 'विला' को, प्राकृत प्रकाशकार भामह और वररुचि के सिद्धान्तों के विरुद्ध, भाषा विज्ञान की रत्तीमात्र भी परवाह न करते हुए, 'चटपटा बिल्ला' के रूप में परिवर्तित कर डाला है।

पाठकों ने यदि उपर्युक्त विवरण सब तन्मयता के साथ पढ़ा होगा, तो उन्हें इस बात का ध्यान बना ही होगा कि मैंने इस बात का उल्लेख किया है कि श्रीयुक्त लम्बकर्णं च्याटर्जी एकान्तवास सा करते थे; पूरा एकान्तवास नहीं। हारमोनियम के अन्दर से 'सा' की ध्वनि निकलते ही, जिस प्रकार संगीत की आगे आने वाली स्वर के लिए श्रोताओं के मन में स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है, उसी प्रकार हमारे इस वाक्य का यह 'सा' भी कुछ उत्सुकता अवश्य उत्पन्न कर सकता है। लेकिन यदि कुछ देर तक उत्सुकता बनायी जा सके तो अधिक अच्छा है।

'चटपटा बिल्ला' को बिल्ला न कह कर कोई होटल कहा जाय तो विशेष उपयुक्त हो। श्रीमती मीनाची की कृपा से उनके नव-पूरे नव मित्रों को, वहाँ प्रति सप्ताह सायंकाल का व्यालू मिल जाया करता है और कभी-कभी कुछ लाल तरलपदार्थ के बोतल भी। फिर भी आज कल पता नहीं क्यों बाजार कुछ मन्दा सा है।

श्रीमती मीनाची और उनके पति देव में पटती नहीं। शायद दोनों की ही वृष राशि होने से, वे आपस में लड़ा करते हैं। फिर भी तरह दे जाने में मिस्टर लम्बकर्णं एक ही हैं। श्रीमती मीनाची तो उन्हें पूरा निखट्टू और खूसट ही समझती हैं। यद्यपि कुल कमाई श्रीयुक्त लम्बकर्णं ने ही की है, फिर भी श्रीमती मीनाची उन्हें बेकार समझती हैं।

श्रीयुक्त लम्बकर्णं श्रीमती मीनाची की चायपार्टी में बहुत कम सम्मिलित होते हैं। यदि कभी आफत के मारे वे उस चहलोल

में फँस जाते हैं, तो बहुत ही झेंखते हैं। स्वामी कर्पूरानन्द, जो श्रीमती मीनाक्षी के मन्त्र गुरु हैं, प्रायः इन पार्टियों में सम्मिलित रहते हैं। वे कोई न कोई वेदान्त चर्चा छेड़ देते हैं, तो उस समय श्रीयुक्त च्याटर्जी हक्के बक्के से होकर उनका मुँह ताकने लगते हैं, कुछ 'हाँ' या 'ना' नहीं कह सकते।

बिचारे श्रीयुक्त च्याटर्जी ने कोयले के रोजगार द्वारा तो इतना अतुल ऐश्वर्य प्राप्त किया, फिर उन्हें वेदान्त दर्शन की कहाँ फ़ुर्सत। मोगलसराय के पास ही उनकी कोयले तथा लोहे की बड़ी .भारी दूकान है। अच्छे से अच्छा गार्डर आप उनकी दूकान से प्राप्त कर सकते हैं। वे जंगल खरीद कर कोयला बनावें या वेदान्त के नाम संसार को मिथ्या मान बैठें। हाँ कोयले के सम्बन्ध में कोई वार्तालाप होता तो वे जरूर बोलते। पर कहाँ जलपान की मेज़ और कहाँ कोयला!

श्रीयुक्त च्याटर्जी को केवल दो चीजों से प्रेम था। एक तो निरल्ले में बैठ कर बोतल का कार्क खोल कर गला सींचना और दूसरे प्राचीन कलाओं का संग्रह करना। आपने अपने संग्रहालय में हजारों ही प्राचीन प्रस्तर मूर्तियाँ और स्तम्भ इकट्ठे किये हैं, पर उनमें एक भी ऐसा नहीं जो खण्डित न हो।

किन्तु श्रीयुक्त चटर्जी इस ४६ साल की प्रौढ़ावस्था में भी परिश्रमी बहुत थे। रोज ६ बजे दफ्तर जाकर सन्ध्या समय ७ बजे लौटते थे। फिर सीधे अपने एकान्त कक्ष में आकर अपना गला तर करते थे।

और इतने पर भी श्रीमती मीनाक्षी अपने पतिदेव को काहिल बतलाती हैं। अपनी अन्तरंग सखी श्रीमती स्वर्ण मालती से वे इस तरह अपनी दारुण दशा रो रो कर सुनाया करतीं—बहिन देखती हो न! कुछ भी तो घर का काम काज देखते। सबेरा हुआ कि दफ्तर गये। कभी वहीं खाना खाया, कभी १२ बजे घर आकर भोजन किया। फिर लौटे तो ७ बजे शाम को। यहाँ आकर भी या तो अपने कमरे में घुसे रहेंगे, या चल देंगे व्यापार मण्डल की मीटिंगों में। न तो ताश ही खेलेंगे न शतरंज, न पियानो का ही शौक! न हमारी चायपार्टी में ही शरीक होंगे। कुछ तो घर का काम काज देखते।"

सचमुच, यह श्रीयुक्त व्यटर्जी के लिए कितनी घोर लज्जा की बात थी!

और इसी कारण घर के ये बड़े-बड़े काम काज श्रीमती मीनाक्षी को ही करने पड़ते थे। चायपार्टी के समय यदि किसी ने कालिदास या रवीन्द्रनाथ का कोई छन्द पढ़ा तो श्रीमती मीनाक्षी को ही, समझे या बिना समझे उसकी सराहना करनी पड़ती थी। स्वामी कर्पूरानन्द जब वेदान्त की विवेचना करते तब भी श्रीमती मीनाक्षी को ही हुँकारी भरनी पड़ती!

पतिदेव की इस ओछी मनोवृत्ति तथा आलस्य परायणता का वर्णन वे सब कहीं, अपने घर पर, महिलान्दोलक मण्डल, नारी-निकेतन, अबला-सञ्जीवनी परिषद्, वंगीय अँगना समाज आदि सभाओं में तथा सब किसी से किया करती हैं। केवल पति की

एक विशेषता का विवरण वे सब से छिपाती थीं, यद्यपि उक्त संस्थाओं में सभी सदस्य आपस में उस विशेषता की चर्चा किया करते थे। और वह विशेषता यह थी कि श्रीमान च्याटर्जी छानते थे अर्थात् सुरा देवी की उपासना किया करते थे!

और इसका यह मतलब कदापि न थी कि श्रीयुक्त च्याटर्जी पियक्कड़ या शराबी थे, या गहरे में छानते थे, इसका सीधा सादा अर्थ था वे शराब पीते थे!

इस कथन में कोई अतिशयोक्ति न थी! नींद खुलने के साथ ही साथ बिस्तर पर पड़े २ ही आप मृतसञ्जीविनी सुरा का पान करते थे। और कौन मूर्ख सञ्जीवित न होना चाहेगा। पश्चात् भोजन करने के वे बलवर्धक आसव पीकर बली होते थे। फिर दफ्तर जाते समय मार्ग में कार्नवालिस होटल में पहुँच कर Energetic wine पीकर कुछ सामर्थ्य का अनुभव करते। और, फिर कर तो लेता कोई कम्पनी वाला उनका मुकाबिला—व्यापार या हिसाब किताब के मामले में।

(२)

सब मित्रों के होते हुए भी श्रीमती मीनाक्षी को यदि किसी से शान्ति मिलती है, तो वह अपनी परम सुन्दरी कन्या शैला से ही।

शैला लैला से कम मनोहर नहीं थी। वह पड़ी भी अपनी माँ को ही। विलक्षण समानता थी। प्रायः सभी सोसाइटियों में लोग एक को दूसरा समझने का भ्रम कर बैठते थे। और जिस किसी को ऐसी भ्रान्ति हो जाती थी, उसे चटर्जी बँगलों में चाय

पानी का निमन्त्रण अवश्य ही मिलता। तब यदि लोगों को माँ बेटी की पहिचान में भ्रम हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

शैला सुन्दरी है। चमकीले तारों की तरह कोमल आँखें है।

श्रीमती मीनाक्षी के नव मित्रों में कुछ नवयुवक भी थे। ये वहाँ आते हैं चायपान या सुरा पान करने नहीं, वरन् शैला की रूप सुधा का पान करने। वे लोग उसके सामने पार्टी के समय नाना प्रकार के पाण्डित्यसूचक वाद विवाद करते हैं। जो गणितज्ञ है वह तर्क शास्त्र की आलोचना करता, जो फिलासाफी पढ़ चुका था वह उसी की चर्चा करता, जिसने जिन्दगी भर साइन्स पढ़ा था वह लगता Milton के Paradise Lost की विवेचना करने ! पर जब कोई कई विषयों का जानकार विद्वान् उस मण्डली में आ जाता तो इन बकवादियों के ज्ञान की पोल खुल जाती थी !

नगर में कोई भी नयी चीज आवे सबसे पहिले उसका पता श्रीमती मीनाक्षी को ही लगता है। कौन नेता कब बनारस से बाहर गया, इसे आप श्रीमती मीनाक्षी से पूछ लीजिये। कोई भी कलाकार या संगीतज्ञ नगर में आवेगा तो उससे सर्व-प्रथम श्रीमती मीनाक्षी भेंट करेंगी। इसीसे आप जान सकते हैं कि न केवल नारी समाज वरन् पुरुष समाज में भी श्रीमती मीनाक्षी का कितना अधिक प्रवेश है।

एक दिन नगर में महाश्रमण गायकगिल्डा के आने की सूचना हुई। एक नवयुवक ने कहा महाश्रमण गायकगिल्डा उत्तरी

चीन से आ रहे हैं। यहाँ वे गावड़ सम्प्रदाय का प्रचार करने आये हैं।

"यह गावड़ धर्म क्या है' श्रीमती मीनाक्षी ने पूछा। स्वामी कर्पूरानन्द जो सब कुछ थोड़ा बहुत जानने का दावा करते है बोल उठे—महात्मा बुद्ध के प्रधान शिष्य सुदिपण्ड घोषानन्द ने इस सम्प्रदाय की सृष्टि की थी। निर्वाण अवस्था के बाद की अवस्था का नाम गावड़ावस्था है, ऐसा वेदान्त सूत्रों में पाणिनि के के शिष्य पतञ्जलि ने लिखा है !

यह जान कर कि निर्वाण के भी बाद गावड़ावस्था है, श्रीमती मीनाक्षी को बड़ा हर्ष हुआ ! स्वामी कर्पूरानन्द की सलाह से उन्होंने उसी समय यह घोषणा की कि इस नगर में भी एक गावड़गिल्ला प्राच्य परिषद् की स्थापना की जाय जिसके अन्दर परसों महाश्रमण गावड़गिल्ला को निमन्त्रित किया जाय। श्रीमती मीनाक्षी का यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। केवल शैला ने प्रस्ताव के पक्ष में वोट नहीं दिया। वह बोली—सम्प्रदाय यह चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, इसका नाम सुन्दर नहीं प्रतीत होता !

श्रीमती मीनाक्षी उसी रोज महाश्रमण गावड़गिल्ला से मिल आयीं। महाश्रमण की भाषा वे कुछ न समझ सकीं। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ने जो एक बँगाली ही था, उन्हें उनकी बातों का मतलब समझाया !

तीसरे दिन मीटिंग हुई। महाश्रमण गावड़गिल्ला आये।

उन्होंने एक भाषण दिया, जिसका अर्थ उनके सेक्रेटरी ने उपस्थित व्यक्तियों को समझाया। उनका सारांश था कि महाश्रमण गावड़गिल्ला भारतवासियों की भलाई के लिए ही चीन छोड़ कर यहाँ पधारे हैं। ये बहुत समय तक इंगलैण्ड के बर्लिन नामक शहर में भी निवास कर चुके हैं। जिब्राल्टर झील के किनारे उन्होंने ७००० व्यक्तियों को अपने उपदेश द्वारा गावड़ बनाया था?

लोगों ने पूछा—गावड़ धर्म कैसा है।

महाश्रमण के मन्त्री ने कहा—गावड़ धर्म है, घर से उदासीनता, मौन धारण, पेट साफ रखना, तथा रात के समय आँख पर पट्टी बाँधकर मैदान में चाँदनी के नीचे सोकर 'गावड़' का ध्यान करना।

धीरे धीरे गावड़गिल्ला प्राच्यपरिषद् की बैठक श्रीमती मीनाक्षी के बँगले पर होने लगी। प्रति रविवार को उन्हीं के यहाँ भाषण भी होने लगे।

एक दिन महाश्रमण ने कहा—तुम सब नारियों ने गृह का मोह तो त्यागा, किन्तु गहनों का मोह नहीं त्यागा। इन्हें पहिन कर सभा में न आया करो। यदि आना ही हो तो एक-एक नेकलेस या मोतियों की माला पहनकर आया करो।

लोगों ने कहा महात्मा गावड़गिल्ला धन सम्पत्ति के कितने विरोधी हैं। उनकी प्रशंसा की धूम मच गयी।

एक रोज रात्रि में सब स्त्रियाँ अपने-अपने घर गहने रखकर

सभा में आयी थीं। उस दिन महाश्रमण ने देखा सबके गलों में मोतियों की मालाएँ तथा बहुमूल्य चन्द्रहार पड़े हुए हैं।

उस दिन महाश्रमण मन-ही-मन प्रसन्न हुए। बोले, आज तुम लोगों के व्रत का चालीसवाँ दिन है। आज मैं तुम लोगों को महात्मा गावड़ का चरणामृत दूँगा।

इतना कह कर उन्होंने सबको एक-एक चम्मच में चरणामृत देकर कहा—अब तुम लोग 'गावड़' का ध्यान करके आँख मूँद कर चरणामृत पी जाओ!

स्त्रियाँ तथा युवकों ने ऐसा ही किया! सब के सब बेहोश हो गये! गावड़गिल्लाने गहने उतार लिए और वे प्रसन्नता से कम्पाउण्डके बाहर जा ही रहे थे कि फाटक पर ही उन्हें मोटर में आती हुई सशस्त्र पुलिस दीख पड़ी। वे तुरन्त ही पकड़ लिए गये।

बात यह है कि बालिका शैला को कई दिनों से महाश्रमण की नीयत पर सन्देह हो रहा था। वह इधर कई दिनों से परिषद् की मीटिंगों में भाग नहीं ले रही थी, छिपकर गतिविधि पर दृष्टि मात्र रख रही थी। आज जब उसने दासी से सुना कि महाश्रमण चरणामृत बाँटने जा रहे हैं तो वह तुरन्त पिछले दरवाजे की राह पुलिस चौकी पर पहुँच गयी। उसके बाद जो घटना घटी वह पाठकों ने देख ही ली!

शैला की बुद्धिमानी से वे सब वस्तुएँ बच गयीं जो श्रीमती मीनाक्षी की मूर्खता से जा चुकी थीं। सबके हार सबको मिल गये। महाश्रमण को चेले के साथ चार वर्ष के कठोर कारावास-

का दण्ड मिला। पता चला कि वे पहले के भी सजायाफ्ता हैं।

शैला को सरकार ने एक पदक पुरस्कार में दिया।

गावखगिल्ला प्राच्यपरिषद् बिना किसी के तोड़े ही स्वयं टूट गयी।

आज कल श्रीमती मीनाक्षी ने दावत देना भी कम कर दिया है।

परसू मिसिर

परसू मिसिर नैनीताल से जिस दिन लौटे, उसी दिन घर में सामान पटक कर सीधे दौड़े, और हाँफते-हाँफते अपने पड़ोसी मुंशी पौनालाल के मकान पर पहुँचे और लगे चिल्लाने—अरे ओ लाला, अरे ओ पौना, अरे ओ मुंशी जी, कहाँ हो ? जरा निकलो तो घर के बाहर।

मुंशी जी उस समय खाना खाकर खाट पर लेटे थे। झपकी आ गयी थी। पहिली नींद थी, वे एक स्वप्न देख रहे थे ! मुंशी जी ने स्वप्न में देखा कि वे दिवंगत होकर यमपुरी में पहुँचाये गये हैं। यमराज अपने आसन पर बैठ कर पाप पुण्य का निर्णय कर रहे थे। असामी अनेक थे। मुंशी जी की बारी आने में अभी देर थी। वे चित्रगुप्त से बोले—"पेशकार साहब, कुछ खैनी ओइनी नायँ रक्खे हो"। चित्रगुप्त ने उन्हें इशारे से चुप होने को कहा और फिर लगे अपनी बही में कुछ लिखने।

यकायक मुंशी जी ऊँघने लगे। यमराज ने पुकार कर कहा—हाँ, मुंशी पौनालाल को पेश करो।

अब तो मुंशी जी लगे थरथर काँपने।

बोले—हुजूर धर्मावतार, मैं अपने को खुद पेश करता हूँ। मगर जरा मुझे पेशाब कर आने दिया जाय।

यमराज ने एक दूत को आज्ञा दी—"लाला के साथ जाओ।" बाहर निकल कर पौनालाल ने दूत से कहा—मियाँ खानसामा साहब, हमें तो तुम छोड़ देते! लो तुम्हारे पान खाने को यह एक चवन्नी हाजिर है। यमराज न जाने हमें क्या दण्ड दें।"

दूत ने डपट कर कहा—मूर्ख! क्या यह कलियुगी मर्त्यलोक की कचहरी है या महात्मा यमराज कोई आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं जो तुमने इस प्रकार का दुःसाहस किया। ऐसा कहने से चित्र-गुप्त की बही में तुम्हारा एक पाप और लिख लिया गया!

इतना कह कर मुंशी जी को ढकेलता हुआ दूत उन्हें कचहरी की ओर ले चला।

तब तक मुंशी जी के कानों में आवाज आयी—ओ ओ लाला, अरे ओ पौना, अरे ओ मुंशी जी, कहाँ हो, जरा निकलो तो घर के बाहर!

"दोहाई महाराज की आन छोड़ो" चिल्लाते हुए मुंशी जी जाग पड़े। तब तक सीढ़ियाँ चढ़ कर परसू मिसिर उनके सिरहाने पहुँच चुके थे। मुंशी जी उन्हें देखते ही खटिया छोड़ कर भागे। बाद जब उन्होंने मिसिर जी की सूरत अच्छी तरह पहचानी, तब

उनके दिल की धड़कन कुछ ठीक हुई।

परसू मिसिर बोले—वाह रे मुंशी जी, अभी ग्यारह नहीं बजे और आप सो रहे। बतलाइये घर का और नगर का क्या हाल चाल है। जल्द बतलाइये, क्योंकि अभी मुझे और भी कई जगह जाना है। सीधे स्टेशन से चला आ रहा हूँ। अभी हाँथ मुँह धोकर जलपान तक नहीं किया है।

पर मुंशी जी असली मुंशी थे। इतना संकेत करने पर भी उन्होंने परसू मिसिर से मुंह हाथ धोने या जलपान करने का नाम तक नहीं लिया। वे कहने लगे—क्या हाल चाल बतलावें महराज, एक सफ्ता हुआ कि मेरी चचेरी बहन गत हो गयी। इन डाक्टर बैद्य हकीमों को क्या कहूँ। ये गधे दवा दर्पण तो खाक नहीं जानते, मरीजों की गर्दन मारने को कसाई की तरह तैय्यार रहते हैं।

'आखिर क्या बात हुई मुंशी जी, क्यों उनपर खफा हो रहे हैं' परसू मिसिर ने पूछा!

मुंशी जी बोले—पहिले मैं एक बैद्य की दवा करा रहा था। कुछ लाभ न होते देखकर डाक्टर बीरुम भादुड़ी के यहाँ गया। उन्होंने पूछा—किसकी दवा करते थे। मैं बोला—पं० चतुरानन्द बैद्य की। वे बोले—"वे क्या खाकर दवा करेंगे, पसियों हींग जीरा का चूरन खिलाने से कहीं रोग अच्छा होता है। न हृदयकी परीक्षा ये कर सकें, न फेफड़ों की ही। इनके पास यन्त्र ही नहीं, बेचारे लाचार हैं। उपवास खूब करावेंगे चाहे रोगी मर ही क्यों न जाय।

डाक्टर, साहब को घर लिवा लाया। चार रुपये फ़ीस के ले गये। दस आने की दवा घस दी। पिलाया। रोग घटने के बदले बढ़ गया। लोगों ने कहा—हकीम बबूलवल्मा को दिखाओ। हकीम साहब ने जब सब हाल सुना तो बड़ा बिगड़े—अब क्या आये हो? ये डाक्टर वैद कुछ जानते भी हैं। पेट साफ़ करते हो नहीं। दवा पिला देते हैं। हकीम लुक़मान ने क्या खूब कहा है कि सब मर्ज़ की दवा फस्त और दस्त है।

हकीम साहब ने इतने दस्त कराये कि मरीज की हड्डी पसलियाँ तक निकल गयीं। पड़ोसियों ने समझाया—यार हिन्दू होकर, किस अधर्म में पड़े हो। आयुर्वेद सब चिकित्साओं का मूल है। चतुरानन्द से अच्छा न हुआ तो सगुणानन्द को दिखाओ; लेकिन दवा करो वैद्य की ही।

पं० सगुणानन्द आये। आते ही बोले—हरे राम। रोगी की दशा कैसी हो गयी है। ये डाक्टर रोग का हाल का जानें। नाड़ी पकड़ने तक का तो सहूर ही नहीं। थर्मामेटर से बुखार नापने चले हैं। वे कोट पैण्ट द्वारा जनता पर रोब गाँठा करें, हम लोग मिर्जई पहिनने वाले इतने रोबीले कहाँ से हो सकते हैं। पर यह स्पष्ट है कि "यस्य देशस्य यो जन्मा तज्जं तस्यौषधं हितम्"। ये डाक्टर हमारी ही जड़ियों और मिर्च मसालों का रस खींच कर उन्हें लालपीले रँगो में रंग, शीशियों में भर एक का चार कमा रहे हैं। लीजिये यह दवा, इसे पान का रस गरम कर के उसके तथा शहद के साथ चटाइये।

चाटते-चाटते मुंह में निनावाँ भर आये, पर ज्वर में कोई कमी न हुई। मेरे साले ने कहा—फिर किसी डाक्टर को दिखाओ। डाक्टर आये। शरीर को बर्फ से ढँक देने को कहा। देह बर्फ से ढक दी गयी। मरीज का थोड़ा खून निकाल कर ले जाने लगे। मैंने पूछा यह क्या कीजियेगा। बोले—देखूँगा, किस प्रकार का ज्वर है।" मैंने मनमें कहा—वाह, ज्वर को पहचाना नहीं, और बर्फ-चिकित्सा शुरू कर दी।" उन्हें ताँगे पर बिठाकर भुँभलाता हुआ ऊपर आया। और बोला तुरन्त बर्फ हटा दो, पर तब तक बिटिया स्वयं ही बर्फ हो चुकी थी।" ऐसे लोग हैं ये मुंशी डाक्टर।

परसू मिसिर बोले—

क्या करोगे लाल !

कलियुग ने डाक्टर बैदों को खूब दबोचा।
रुपये पैसे और इन्होंने सबसे नोचा॥
परम लण्ठ, कर कण्ठ वृथा, दारू पी बैठें।
मन होता है इनका भर कर कान उमेठें॥
कहते पुकार परसू मिसिर, उनको देंये प्रान भी।
पर मुंशी कंजूस ये, हमें न दें जलपान भी॥

इतना कह कर परसू मिसिर चलते बने।



टी पार्टी

पाठकों में से, और शायद पाठिकाओं में से भी, बहुतों को कभी न कभी एक या अनेक टी पार्टियों में सम्मिलित होने का अवसर अवश्य मिला होगा।

सतयुग, त्रेता और द्वापर में जितना ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, श्राद्ध या तर्पण महत्वपूर्ण नहीं थे, उससे अधिक महत्वपूर्ण इस कलियुग में यह 'टी पार्टी' हो गयी है। ब्राह्मणभोजन, यज्ञ या श्राद्ध को भी वर्तमान कालीन परिष्कृत भाषा में हम 'पार्टी' के नाम से व्यवहृत कर सकते हैं। वे सब थे 'घी पार्टी'। कारण उन पार्टियों में सुन्दर और पवित्र गो घृत या भैंस के घी की नदियाँ बहा करती थीं और चतुर्दिक् समीरण को स्वच्छ तथा स्वास्थ्यकर बनाती हुई लोक-कल्याण किया करती थीं।

अब घी तो रहा नहीं, उसके बदले में आ गया यह 'टी'।

हमें निश्चितरूप से तो नहीं मालूम, हाँ प्रोफेसर राइबक्कर कृत "सृष्टि के पूर्वकाल का इतिहास" नामक विशालग्रन्थ के किसी

अध्याय में 'टी' अथवा 'चाय' के प्रादुर्भाव तथा महत्व के व्याख्यान को लेकर जो निबन्ध प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर हम इस घटना का विवरण यहाँ दे देना उचित समझते हैं।

प्रोफेसर गड़बड़कर अपने 'सृष्टिकाल के पूर्व का इतिहास नामक ग्रन्थ में जो कुछ लिखते हैं उसका साराश यह है।

प्रोफेसर गड़बड़कर जब तिब्बत गये थे तो उन्हें जंगल में घूमते-घूमते किसी चूहे की बिल में 'लोलिम्ब निम्ब लतिका' नामक अप्राप्य पुस्तक के चार पाँच पन्ने उपलब्ध हुए थे। उनमें भी एक पन्ना चूहे ने इस तरह कुतर डाला था, कि उसके अक्षर बड़ी कठिनता से पढ़े जा सकते थे। बड़ी कठिनता के साथ ही प्रोफेसर साहब को उन चार पन्नों से यह विदित हुआ कि उक्त ग्रन्थ महा बौद्धभिक्षु कुकलास कन्दलायन ने ईसामसीह के सत्रह हजार वर्ष पहिले सेवर की घाटी में बैठकर लिखा था।

उन चार पन्नों में ही चाय के सम्बन्ध की चर्चा की गयी थी—"कहते हैं कि एक बार महर्षियों ने महात्मा देवर्षि नारद जी से प्रश्न किया—भगवन्, आप,त्रिकालज्ञ हैं। आज कल सोमरस तथा विजया का भाव कुछ महँगा हो गया है। कलियुग में जब दूकानदार लोग बेईमान हो जायँगे, मधु के नाम पर शीरा तथा दूध के नाम पर विशुद्ध जल बेचने लग जायँगे, तब हमारे सन्तानों को शुद्ध सोमरस तथा विजया की उपलब्धि किस प्रकार होगी?

देवर्षि नारद जी ने हँसकर जवाब दिया—महर्षियों, आप

का इस प्रकार शंकाकुल होना उचित और स्वाभाविक ही है। कलियुग में सचमुच ही सोमरस तो एक दम दुर्लभ ही हो जायगा, हाँ विजया अवश्य ही आज्ञा-प्राप्त ठीकेदारों की दूकानों पर मिल सकेगी। महर्षियों, पर उस समय एक और खास चीज का प्रचार होगा और कलियुग में उसका महत्व होगा। काले लोग उसे कहेंगे 'चाय' और गोरे कहेंगे 'टी'।

सज्जनों, जिस प्रकार इस समय गाय की महत्ता है, उसी प्रकार कलियुग में 'चाय' की महत्ता होगी। सर्व साधारण चाय की पत्ती को ही सर्वस्व समझेंगे। वैद्य लोग 'सनाय की पत्ती' के बदले चाय की पत्ती को ही रसायनों की पितामही मान कर उसीका आश्रय ग्रहण करेंगे। जिस प्रकार इस समय 'घी' का सेवन हो रहा है, उसी प्रकार उस समय 'टी' का सेवन होगा। डाक्टर लोग स्वर्ण पर्पटी के स्थान पर 'काफी और टी' की ही व्यवस्था करेंगे।

'टी' का वे लोग इतना अधिक आदर करेंगे कि उसके नाम पर ही शब्दों को गुणवाचक या भाववाचक बना देंगे। जैसे मैजिस्ट्रेटी, वायसराइलिटी। जब तक रायल्टी न छोड़ा जायगा, प्रकाशक लोग जल्दी पुस्तक न छापेंगे। बी० टी० सी० टी, के० टी०, जेटी सरीखे शब्दों का विशेष प्रचार हो जायगा।

यद्यपि उस समय कुछ और भी चीजें जैसे गाँजा, अफीम, चरस, ताड़ी आदि भी होंगी, पर इनका महत्व चिरस्थायी

न होगा। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक सन १६३८ में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल सरीखी शासनपरिषद् की स्थापना हो जावेगी। कांग्रेस एक साथही मद्यनिषेध के प्रचार द्वारा मादक पदार्थों जैसे गाँजा ताड़ी आदि के दूकान तोड़ कर स्वयं ही गाँजे के दूकान खोलेगी तथा ताड़ी चुआया करेगी।

कलियुग में कविगण भी ऐसे उत्पन्न होंगे जो मधुशाला ताड़ीशाला सरीखे काव्यों का सृजन करेंगे। पर इतना सब कुछ होने पर भी, चाय का महत्व अक्षुण्ण ही रहेगा!

चाय का प्रचार बी० एन० डब्ल्यू रेलवे के स्टेशनों से लेकर सम्राट् के बकिंघम पैलेस तक हो जायगा, और उसका सर्वत्र समान समादर होगा। जिस तरह श्याम सुन्दर को प्रसन्न करने के लिये तुलसीपत्र तथा विभूतिभूषण कर्पूरधवल महादेव को सन्तुष्ट करने के लिए बिल्व पत्र का व्यवहार आप लोग करते हैं, उसी प्रकार गौरांग महाप्रभुओं की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए लोग चाय-पत्र का प्रयोग करेंगे और शीघ्र रायसाहब या रायबहादुर होकर अपने को धन्य समझेंगे।

देवर्षि के इस कथन से महर्षियों को बहुत सन्तोष हुआ और वे अपने भावी सन्तानों के शुभ लक्षणों को जानकर परम प्रसन्न होते हुए अपने-अपने आश्रमों को चले गये।"

किन्तु जो कुछ भी बात हो, प्रोफेसर गड़बड़कर का मत है कि प्राचीनकाल में महर्षियों को चाय का नशा था और वे लोग प्रचुर परिमाण में चाय सेवन किया करते थे।

कुछ लोग सूखी पत्ती स्वल्प जल में पीसकर, भाँग की तरह गोली बना लेते थे और उसे गले के नीचे उतार जाते थे। इस प्रक्रिया को वे लोग 'गुटका' कहा करते थे। उन्हीं में कुछ परिवर्तनवादी भी थे, जो जल में 'टी' को घोलकर पीते थे और इस प्रक्रिया को 'सटीक' (स=साथ, टी=चाय, क=जल) कहा करते थे। 'गुटका' पार्टी वाले ग्रन्थकारों ने गुटका या मूल रचनाएँ ही कीं, 'सटीक' दल वालों ने या तो ग्रन्थों की 'टीका' की या सटीक पुस्तकों का ही प्रणयन किया—।

मुझे भी 'टी' पार्टी में सम्मिलित होने का एक अवसर मिला था। नगर के सुप्रसिद्ध रईस रायबहादुर बा० चपरगट्टू प्रसाद मारवाड़ी ने अपनी कन्या के विवाह के उपलक्ष में मित्रों को खास कर ऐंग्लो इण्डियन साहबों को, टीपार्टी दी थी।

आमन्त्रित व्यक्ति धीरे-धीरे आ रहे थे। जो लोग आ चुके थे वे आपस में गप्पें हाँक रहे थे। मैं भी सब लोगों के साथ सहयोग करने लगा।

लाला तिकड़मचन्द ने कहा—सुना नहीं मिस्टर जिन्ना ने फिर अपनी शर्तें पेश की हैं। वे हिन्दी का किस प्रकार बहिष्कार करना चाह रहे हैं। भला साम्प्रदायिक समस्या के बीच यह भाषा का प्रश्न लाना कहाँ की बुद्धिमत्ता है।

बाबू ज्ञानचन्द चकचौलिया ने सिगरेट का धुँआ फेंकते हुए कहा—जनाब भाषा को छेड़ते हैं तो क्या बुरा करते हैं? अब तक इतिहासकारों ने यही माना था कि हिन्दी उर्दू की जननी है,

परन्तु यदि किसी ने यह थ्योरी प्रकट की कि उर्दू ही हिन्दी की माँ है, तो इसमें आप लोगों का क्या जाता है ?

पण्डित मृदंगपाणि बोले—सो कैसे हो सकेगा। अस्मदादिकों की विचारणा में तो एतत्प्रकार की कल्पना का समावेश हो ही नहीं सकता !

लाला तिकड़मचन्द ने कहा—और सुना नहीं, परसों कमिश्नर साहब के बँगले पर फलड-रिलीफ-फण्ड, अरे क्या नाम उनके बाढ़फण्ड के लिए जो मीटिंग हुई थी, उसमें बाबू वैसाखीराम ने १५०००) का चेक दिया है। यार उन्होंने यह रकम निकाली तो कैसे। वे तो जैसे हैं, आप जानते ही हैं। इधर जमींदारी से तहसील वसूल भी नहीं हो रहा है।

राय खबरियामल बोले—जमींदारी पर भी साहब आफत आ गयी है। इन किसानों की अकड़के मारे नाक में दम हो रहा है।

बाबू ज्ञानचन्द बड़बोलिया बोले—नाक में दम होने की खूब कही। चारों तरफ उपद्रव ही उपद्रव तो हो रहे हैं। घर में पतोहुओं की फेशन-परस्ती के मारे सास की नाक में दम, लड़कों की युनिवर्सिटी की फीस भरते-भरते बाप की नाक में दम, हड़तालियों के मारे मिलमालिकों की नाक में दम, किसके-किसके नाम गिनाऊँ। मैं तो······

डा० घुरहू प्रसाद अस्थाना बात काट कर बोले—

युनिवर्सिटियों की बात न पूछिये साहब ! ये सब भी संसार

में बेकारी बढ़ाने की मशीन हो रही हैं। वाइस चान्सलर लोग उन्हीं से प्रसन्न रहते हैं जो प्रति दिन उनका दरबार करते हैं। जिस राजा या रईस ने थैली थमा दी उसे उन्होंने D. Litt और Ph. D. की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया, चाहे उनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर ही क्यों न हो।

लाला पिकड़मचन्द कुछ उत्सुकता से बोल उठे—अरे साहब हम लोगों की बात चीत का सिलसिला बदलता जा रहा है। कहाँ मिस्टर जिन्ना की शर्तें और कहाँ युनिवर्सिटी। "हाँ ठीक तो है"—बाबू घुरहूप्रसाद बोले—ये मिस्टर जिन्ना शर्तें पेश करने में जिन्न से भी बढ़ कर दिखलायी पड़ते हैं? क्यों मिस्टर बलबोडिया आप की क्या राय है?'

"कुछ न पूछिये साहब" मिस्टर बलबोडिया ने कहा—वर्तमान राजनीतिक प्रगतिने हड़ताल, पिकेटिंग, अनशन और शर्तों की माँग इतनी सस्ती कर दी है, कि घर घर में ये रोग व्याप्त हो रहे हैं। मैं आपको अभी अपनी आप बीती ही सुना रहा हूँ।

"हाँ हाँ, सुनाइये" पण्डित मृदंगपाणि ने उत्सुकता—मिश्रित स्वर में कहा।

"अभी परसों की बात है" मिस्टर बलबोडिया ने कहना आरम्भ किया—"मुझसे कोई साधारण सी त्रुटि हुई जिस पर दिन भर मेरी श्रीमती जी मुझसे रूठी रहीं"। संध्या को जब मैं घर पर लौटकर आया, तो मैंने मेज पर एक फुलिस्केप कागज़ के ऊपर, श्रीमति जी की हस्तलिपि में एक लम्बा लेख लिखा देखा।

मैंने सोचा शायद चाँद में नारी आन्दोलन या महिला महत्व के सम्बन्ध में कोई लेख भेजा जा रहा है, जो टिकट न रहने के कारण मेरी मेज पर धर दिया गया है; पर जब मैंने कुछ क्षणों के लिए उस पर दृष्टि गड़ायी, तो मामला कुछ और ही मालूम पड़ा।

मैंने देखा उसमें श्रीमती जी ने मिस्टर जिन्ना से भी बढ़कर कठोर शर्तों की माँग पेश की थी। वे शर्तें यों थीं—

(१) आज शुभ सम्वत् १६९५ वि० आषाढ़ शुक्ल द्वितीया बुधवार तदनुसार ईसवी सन् १६३८ तारीख २६ जून की सन्ध्या के ६ बजकर ५१ मिनट से आप अपने को कदापि उच्छृंखल तथा आवारा समझने के लिए बाध्य हैं।

(२) आप मेरे कमरे में मत आया करिये।

(३) आज से आपको नाश्ता एक ही वक्त मिला करेगा और भाँग की पुड़िया एक आने के स्थान पर टकेकी ही रहा करेगी।

(४) आप मेरे कमरे में से फौरन ही अपना सब सामान जैसे पोथी पत्रा, कंघी साबुन, फाउण्टेनपेन, छाता वगैरह उठा ले जाइये।

(५) अब से मेरी ओर ताक कर मुस्करायेंगे, तो अच्छी बात न होगी!

(६) आप मुझे मैके जाने से नहीं रोक सकते।

(७) आज से मैं अपने को आजाद समझने के लिए बाध्य हूँ।

(८) आशा है कि मेरी साड़ियों की बिल के १६५) रु० आप कल शाम तक चुका देंगे।

(९) आप मेरे होते कौन हैं जो मुझे यों चिढ़ाया करते हैं।

(१०) कल से रसोई बनाना भी आपके ही जिम्मे रहा।

महाशयो, ये दस शर्तें कैसी परस्पर विरोधी हैं, उन्हें आप देख ही चुके होंगे। मैंने भी शर्तों के ऊपर हस्ताक्षर करके उनके पास भेज दिया किन्तु लिख दिया कि 'मैं आप की शर्तों को हृदय से स्वीकार करता हूँ; परन्तु उनका पालन तो चार वर्षों के भीतर तो नहीं ही करूँगा, हाँ बाद देखा जायगा।

मिस्टर बड़बोलिया कुछ और भी कहना चाहते थे पर इतने में ही कलेक्टर मिस्टर Long wood की कार कम्पाउण्ड में प्रविष्ट हुई। गप्पाष्टक स्वतः समाप्त हो गया।

तिवारी और पटवारी की बातचीत

बी० एन० डब्ल्यू रेलवे उसमें भी थर्ड क्लास में जिन्हें यात्रा करनी पड़ती है, वे ही जानते हैं कि 'सोने में सुगन्ध' मुहाविरे का प्रयोग कहाँ, और किस कोटितक समीचीन और युक्तियुक्त है! मुझे तो प्रायः ही बी० एन० डब्ल्यू रेलवे द्वारा यात्रा करनी पड़ती है। इसलिये मैं उसकी प्रायः समस्त विशेषताओं से परिचित हूँ। हर यात्रा में कुछ मजेदार अनुभव भी प्राप्त होते रहते हैं। पर पिछली बार जो अनुभव हुआ, उसे सुनाता हूँ।

मैं गोरखपुर जा रहा था। मेरे साथ बनारस के एक तिवारी जी भी, जो सुधारप्रिय व्यक्ति थे, गोरखपुर चल रहे थे। रात का समय था। उन्होंने औंड़िहार में ही एक बर्थ रिजर्व करा लिया और कम्बल दरी बिछाकर उसपर लम्बे हो रहे।

बी० एन० डब्ल्यू आज कुछ लेट थी। यद्यपि यह उसके लिये कुछ नयी बात न थी, फिर भी आज यह मात्रा से अधिक देर

करके आयी थी। चलती भी तो है यह गजगामिनियों को मात करती हुई। इसके 'लेट' होने पर मुझे एक घटना का स्मरण हो आया है।

अक्तूबर का महीना था और सबेरे का समय। मैं शाहगञ्ज स्टेशन पर खड़ा था। गाड़ी आने का समय हो रहा था। एक मेम साहब भी गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही थीं। गाड़ी के आगमन का समय ७ बजकर ३५ मिनट था। पर गाड़ी पौने सात में ही आ गयी। हम सबको सामान्यतः और खासकर मेमसाहब को विशेष आश्चर्य हुआ। उन्होंने गार्ड से पूछा—महाशय, ट्रेन का प्रायः लेट होते हुए ही देखा गया है। और ठीक व्यवस्था रहने पर वह समय पर ही आती है, परन्तु यह ट्रेन ५० मिनट पहिले ही किस प्रकार आ पहुँची? स्टेशन मास्टर कुछ लज्जा और ग्लानि मिश्रित हँसी हँसकर बोले—मैडम, गाड़ी समय से पहिले नहीं आयी है। यह २४ घण्टे लेट है। वास्तव में इसे कलही ७ बज कर ३५ पर पहुँचना था, सो यह कल के बदले आज आ रही है।

अस्तु, जो हो, भेड़ों बकरियों के उस झुण्ड में भी तिवारी जी को टाँग फैलाकर सोने का स्थान मिल ही गया।

तिवारी जी सो गये। मुझपर नींद महारानी की कृपा न होने से मैं जागता ही रहा। अगली स्टेशन पर हमारे डब्बे में एक लाला जी सवार हुए। बातचीत से मालूम हुआ कि वे पटवारी थे। वे तिवारी जी के पैताने भार इञ्च स्थान निकाल कर आसीन

हुए। फिर जिस प्रकार व्यापार करते-करते भारत में अँग्रेजों ने पाँव फैलाना आरम्भ किया था, उसी प्रकार पटवारी साहब ने भी 'जहाँ मैं जहाँ तक जगह पाइये, खिसकते-खिसकते चले आइये, की रीति का अवलम्बन करना आरम्भ किया। पहिले उन्होंने तिवारी जी के पैरों को जो त्रिभुजाकार पड़े थे, उठाकर राइट ऐंगिल की मुद्रा में की, पश्चात् खसक कर पालथी मार कर बैठ रहे।

तिवारी जी की नींद खुल गयी। वे बिगड़े दिल आदमी तो हैं ही, तुरन्त पिनके "वाह महाशय यह कहाँ की सभ्यता है कि किसी सोये हुए व्यक्ति की निद्रा में बाधा उपस्थित की जाय।"

पटवारी बोला—अमाँ खामोशी भी इख्तियार करो। चले हो तहज़ीब का हवाला पेश करने। खुद तो ये हजरत पाँव फैला कर सोयें और बाकी के हम मुसाफिरान जगह की तंगिश की वजह तकलीफ उठावें। तोबा! तिसपर ये हजरत खद्दरपोश हैं।

तिवारी जी बिगड़े—अरे जाओ लाला! निर्धन किसानों का रक्त पान करके अब दया का उदाहरण और उपदेश न दो। तुम्हारे ऐसे बहुत देखे। अधिक टें टें करोगे तो अर्धचन्द्र देकर निकाल दूँगा।

बातों ही बातों में हाथापाई की नौबत आ गयी। किन्तु जो कुछ हो, विवाद के समय भी तिवारी जी यथाक्रम स्वराज-संघ वाली हिन्दी और मुंशी जी मुस्लिमलीग वाली उर्दू ही बलाते रहे।

मैंने किसी प्रकार उन लोगों को शान्त किया। मैंने हिन्दु-

स्तानी भाषा में उन्हें समझाया—नेक मित्रों ! आप शान्त और खामोश हों।

मेहरबानी पूर्वक हमारी आप से यह प्रार्थना और इल्तिजा है।

बेञ्च पर पर्याप्त जगह है। आप आसन पकड़िये।

मेरे 'आसन पकड़िये' पर वे दोनों चौंके।

तिवारी जी हँसकर बोले—यार आसन ग्रहण करिये कहो। यह पकड़ने की खूब रही। यह तो वही हुआ कि किसी अंग्रेज को कुछ दिनों तक हिन्दुस्तानमें ठहरना पड़ा। उसे एक दिन एक गाँव में एक गधे की जरूरत पड़ी। उसे गधा शब्द तो मालूम था, पर 'गधी' का व्यवहार अज्ञात था। उसने एक देहाती गधी बेचनेवाले को बुलाकर कहा—वैल तुम इस जानवर को क्या कहता है ?

दिहाती बोला—हुजूर इसे हमलोग 'गधा' कहते हैं।

साहब ने कहा—आल राइट ! तुम इसकी मेमसाहब को क्या बोलता है।

दिहाती मुस्कराते हुए बोला—गधी हुजूर।

साहब ने कहा—अच्छा, ओ गधी वाले, तुम एक गधी हमें देना माँगो !

तिवारी जी की इस बात पर सब लोग हँस पड़े।

मुझे भी अपना एक निजी अनुभव याद आ पड़ा। मैं उन-दिनों क्रिश्चियन कालेज के सेकेण्ड इयर का छात्र था। प्रिन्सिपल हैण्डमिल अंग्रेजी पढ़ा रहे थे। समय हो गया था, पर चपरासी

ने घण्टा नहीं बजाया। तब उन्होंने एक विद्यार्थी से चपरासी को बुलाकर कहा—बेल चपरासी घण्टा मारो। Strik the bell के इस सफल अनुवाद पर तमाम क्लास मुसकरा पड़ा।

पटवारी ने कहा—तिवारी जी आप गोरखपुर जा रहे हैं। जरा सावधान से रहियेगा। गोरखपुर जिस तरह बी० एन० डब्ल्यू रेलवे का सेण्टर है, उसी प्रकार मच्छड़ों का भी केन्द्र-स्थान है। जिस तरह इस्तीफा देने पर भी सर हैरी हेग ने पं० गोविन्दवल्लभपन्त को नहीं छोड़ा, उसी प्रकार प्लेगने गोरखपुर को नहीं छोड़ा। यदि वहाँ गीता प्रेस न होता तो गोरखपुर कभी का बाबा गोरखनाथ की गोद में समाधि ले लिये होता।

जिस प्रकार सतियों में सीता, फलों में पपीता, पशुओं में चीता तथा पुस्तकों में गीता महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार प्रेसों में गीता प्रेस का स्थान गौरव पूर्ण है। जिस तरह नेताओं में मजूमदार की ख्याति है, उसी प्रकार प्रबन्धकों में पोद्दार भी प्रशंसनीय हैं। बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन की तरह गोरखपुर के बा० पुरुषोत्तमदास अग्रवाल भी विशाल हृदय हैं।"

देवरिया में पटवारी साहब उतर गये।

तिवारी जी ने फिर पैर पसारा—"जरा दस मिनट सो लें। बड़े कमाड़िया से पाला पड़ा था।"

मैंने कहा—तिवारी जी, जो कुछ भी हो आदमी अच्छा था।"

नवाब का नाती

लोग कहते हैं—अरे जाओ बड़े नवाब के नाती बने हो! तुम मेरा कर क्या लोगे?

सर्व साधारण ने नवाब के नाती को बहुत दिनों से बहुत ऊँचा पीढ़ा दे रक्खा है। नवाब के नाना को वह पीढ़ा नहीं ही मिल सका। व्यंग्य विद्रूप में 'नवाब के नाती' का गौरव अधिक व्यक्त होता है।

हम लोगों के सहपाठियों में भी एक नवाब के नाती थे। वे नाममात्र के ही नवाब के नाती थे। जिस प्रकार इस समय नवाब की ड्यौढ़ी है। वास्तव में हम लोगों ने ही उन्हें 'डित्थ डवित्थ' की तरह नवाब का नाती बना दिया था।

हमलोग, छात्रावस्था में लोगों को बनाने में विधाता से भी बढ़ कर होने की डींग हाँकते हैं, यद्यपि 'यदानां निर्मातुस्त्रिभुवन-विधातुस्तु कलहः' कैसा प्रतीत होगा, यह स्पष्ट ही है।

हम लोगों के एक अध्यापक थे, जिनका नाम था ज्ञानभूषण-ओझा G. B. Ojha, पर हम लोगों ने जी० बी० ओझा सूत्र का वार्तिक घोंघा बसन्त ओझा के रूप में किया था।

नवाब के नाती का असली नाम था नन्दकुमार नेहरू अर्थात्, संक्षेप में N. K. N. और इन्हीं अक्षरों के कारण हम लोगों ने उन्हें नवाब का नाती बना रक्खा था।

नवाब की नातियों की ही तरह नवाब के नाती के रङ्ग ढँग भी थे। सबसे अकड़, बुद्धि से शत्रुता और व्यर्थ का रोब जमाना आदि उनके कई गुण थे। एक एक परीक्षा वे तीन तीन बार में पास करते थे।

किसी तरह एफ० ए० पास करने के पश्चात् नवाब के नाती ने डिप्टी कलक्टरी की परीक्षा दी। उसमें भी परीक्षकों की नासमझी के कारण ये लुढ़क ही रहे। इन्होंने पर्चे बहुत अच्छे किये थे। 'जेनरल नॉलेज' के प्रश्नों का उत्तर इन्होंने इस ढँग से दिया था, कि जिस ढँग से पाणिनि ने कौमदी में न लिखी होगी।

किन्तु पराधीन देश के परीक्षकों की प्रवृत्तियाँ प्रायः विकसित न होने के कारण, वे लोग हमारे चरित नायक 'नवाब के नाती' के अलौकिक चमत्कारपूर्ण प्रश्नोत्तर-मालिका का महत्व समझ ही न सके। पहला प्रश्न था—

What do you know about Plato. अर्थात् 'प्लेटो के बारे में आप क्या जानते हैं?

नवाब के नाती ने लिखा था—प्लेटो जमीन के उस हिस्से

को कहते हैं जो दूर तक पानी में घुसा हो, जैसे ग्रीसदेश का 'एरिस्टोटल' नामक प्लेटो।

दूसरा प्रश्न था—आर्य-अभ्युदय काल में काश्मीर की शासन प्रणाली का वर्णन कीजिये।

इसके उत्तर में आपने लिखा था—उस समय काश्मीर में मम्मट नामक राजा था, उसका मन्त्री कोका जी, कोक-शास्त्र का निर्माता था। राजपण्डित श्रीधर पाठक ने ऊजड़ ग्राम की रचना भी वहीं की थी। काश्मीरी स्त्रियाँ जितनी सुन्दर होती हैं, वह कहने की बात ही नहीं है। लोग घोड़े पर सवार होकर लड़ते थे। प्रायः लोग अपने पास तलवार रखते थे। श्रीधर पाठक ने श्रीनगर बसाकर मम्मट नृपाल को वहीं स्थापित कर दिया। मम्मट के बाद दलाई लामा उनकी गद्दी पर बैठे!

तीसरा प्रश्न था—दुनियाँ की सबसे बड़ी नहर कौन सी है? और उसकी क्या विशेषताएँ हैं।

नवाब के नाती ने लिखा था—संसार के पर्दे पर पनामा की नहर सब से बड़ी मानी जाती है।

यह चीन और जर्मनी के बीच एक पहाड़ की चोटी पर है। इसके अन्दर से बहुत प्रकार के अच्छे-अच्छे दाढ़ी घोटने वाले Blades ब्लेड निकलते हैं, जिन्हें लोग आम तौर से पनामा ब्लेड कहते हैं।

चौथे प्रश्न में पूछा गया था Goldsmith गोल्डस्मिथ की कविता-शैली का विवेचन कीजिये।

आपने इसके उत्तर में यह लिखा था—गोल्डस्मिथ ने, जो स्वयं जाति का सुनार था, सुनार जाति की उन्नति के लिए बहुत सी कविताएँ लिखी हैं। उनमें बतलाया गया है कि जो सुनार Good Natured man अर्थात् अच्छा आदमी है, वह कम सोना चुराता है।

इसी प्रकार से शेष प्रश्नों के उत्तर भी नवाब के नाती ने दिये थे। पर जैसा हम कह चुके हैं, वे पी० ओ० एस० में सफल नहीं हुए।

नवाब के नाती जिस प्रकार काफी बनाये जाते थे, उसी प्रकार वरन् उससे अधिक बनते भी थे, जैसे आपने प्रायः डाक्टरों या वैद्यों के यहाँ जाने पर यदि पूछा होगा कि डाक्टर साहब या वैद्य जी कहाँ हैं, तो उत्तर मिला होगा—साहब मरीज देखने गये हैं, चाहे वह भले सिनेमा देखने गये हों या श्राद्ध-भोजन करने।

उसी प्रकार नवाब के नाती का भी स्वभाव था। गर्मी की छुट्टियों में आप जाते तो थे अपने ननिहाल गाजीपुर, किन्तु वहाँ से लौटकर आप कहते थे—इस बार की मेरी छुट्टी नैनीताल में खूब आराम से कटी। यार मोहन, तुम साथ होते तो और भी मजा आता!

मेरे एक मित्र कवि हैं। वे प्रायः अपने घर चले आया

करते हैं। गाँव से लौटने पर कहते हैं—यार अमुक शहर में सभापति होकर गया था, यद्यपि सच पूछिये तो उन्हें आज तक किसी कवि सम्मेलन में सम्मिलित होने का अवसर नहीं मिल सका है।

मेरे एक दूसरे मित्र हैं एक अस्पताल के निरीक्षक, वैद्य। आप बड़े ठाट बाट से रहते हैं। संस्कृत में प्रथमा फेल तथा अंग्रेजी में सेविन्थ पास हैं, परन्तु रोब ऐसा रखते हैं मानों बी० ए० और शास्त्री ही हों। उनका यह रोब सफलता के साथ सिद्ध भी हो जाता है। किसी संस्कृतज्ञ से भेंट होने पर वे उससे अंग्रेजी में ही बात करते हैं तथा किसी अंग्रेजीदाँ संस्कृत शून्य व्यक्ति से वे लगते हैं पाणिनी की भाषा में अपने विचारों का प्रदर्शन करने। फलतः दोनों प्रकार के व्यक्तियों पर उनके पाण्डित्य का रोब छा जाता है।

नवाब के नाती भी कुछ इसी प्रकार के हैं।

उन्होंने अपने पुत्र का नाम रक्खा है "अजघोष"। पूछने पर कहते हैं प्राचीन कोटिके नाम सुमेरी संस्कृति में, ऐसे ही होते थे। अश्वघोष नाम का बड़ा भारी कवि हो ही गया है। खरगोश नामक बौद्ध भंगाली से ही खरगोश नामक पशु का नामकरण किया गया था आदि आदि !

नवाब के नाती केवल मुझसे रोब नहीं गाँठते और सप्ताह में एक बार मेरा दर्शन अवश्य कर जाते हैं। आप यदि हमारे यहाँ कभी आवें, तो उनसे मुलाकात हो सकती है।

कला कला के लिये

परमात्मा न करे, किसी हठी से पाला पड़ जाये ? सम्पादन आरम्भ करने के पहिले लोग 'हठयोग' भी सीख लिया करते हैं क्या ! इस समय दो ही चीजें सस्ती हैं, कवि-सम्मेलन और सम्पादक ! इस बेकारी के युग में इन दोनों चीजों से क्षणभर के लिये जनता का मनोरञ्जन अवश्य हो जाता है। पर जैसी आफत बीतती है बेचारे लेखकों पर, उसे उनका दिल ही जानता है !

मिर्जापुर के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'पटवारी' के सम्पादक श्रीयुत खरावदास सिनहा, मेरे उन मित्रों में हैं जो मेरे यहाँ बचपन में चपत और चपातियाँ खाकर भी प्रसन्नता का अनुभव किया करते थे। मेरे साथ ही उन्होंने हिन्दी की साहित्यरत्न परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। उसके एक पर्चे में उन्होंने इस बात का बड़ी युक्ति के साथ प्रतिपादन किया था "कि जब छेकानुप्रास, वात्य-

नुप्रास आदिको अनुप्रास माना जाता है; तो 'च्यवनप्रास' को भी अनुप्रास अवश्य माना जाय।"

मैं उनकी इस विशेषता के कारण नहीं, वरन् उनके भोलेपन की वजह से अपने इस पुराने मित्र से प्रेम करता आया हूँ। किन्तु कभी-कभी लोग मित्रता का दुरुपयोग भी करना चाहते है। और यही हरकत खटकने वाली होती है। भला बतलाइये, प्रति सप्ताह "लेख भेजिये, लेख भेजिये" लिखकर दिमाग खराब करना भी क्या किसी कुलीन और सभ्य समाज के अनुरूप आचरण माना जायगा।

इन सम्पादकों को लाख समझाइये—"भैय्या, फ़ुरसत नहीं है! बीबी और बच्चों की माँग के कारण तबीयत योंही चिन्ताकुल रहती है, तुम लोग भी इस तरह तंग करोगे, तो कैसे काम चलेगा। पर जिस तरह बिदाई की समस्या पर ससुर साहब एकदम मौन धारण करना ही उचित समझते हैं, उसी प्रकार ये सम्पादक नामधारी जन्तु भी इस प्रश्न को विचार कक्षा में रखने के लिये तत्पर नहीं मालूम पड़ते! लाख समझाइये, इससे क्या!

बार-बार समझाने पर भी लाला खरावदास ने एक न सुना और लेख प्राप्त करने मेरे यहाँ सदेह आ ही धमके।

कहाँ उनका अखबार परसों प्रकाशित हो जाना चाहिये, और कहाँ वे आज मेरे यहाँ बनारस आ पहुँचे, यह देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ!

लाला खरायतदास आ गये थे। बिना पूर्व सूचना की आँधी पानी की तरह ! उनका इस असमय में आगमन आश्चर्य-जनक नहीं तो और क्या था ! आने के साथ ही चिल्लाकर बोले—यह आदत ठीक नहीं, चिट्ठी का जवाब आप क्यों नहीं देते ? खैर अब आप शीघ्र ही एक लेख लिखकर दीजिये। देखिये लेख कला पूर्ण हो ! कला कला के लिये ! भावों को विशेष स्पष्ट करने के निरर्थक प्रयत्न में आप भाषा का हत्या न कर डालियेगा। आपने टैगोर स्कूल की चित्रकारी देखी होगी। भले ही उसके अन्दर आपको किसी चित्रदर्शन की अनुभूति न हो, पर उसके अन्दर एक विशिष्ट कला है, और वह केवल कलाके लिये है, इसे कौन अस्वीकृत कर सकता है ? देखिये, लेख दो पन्ने का हो। यदि सवा दो या पौने तीन पृष्ठ के बीच का हो तब भी कोई हर्ज नहीं है। और देखिये विषय जरा रोचक हो। हेडिंग सुन्दर और आकर्षक हो, इसका यदि ध्यान बना रह सके तो अत्युत्तम। अक्षर जरा बहुत मोटे न हों। बहुत काटाकूटी मत कीजियेगा। पर सबसे मुख्य बात यह है "कला का पूरा निर्वाह, उसमें आद्यन्त बना रहे। लेख समाप्त होते होते शैथिल्य न आ जाय। अनुप्रास-मय भाषा हो।"

मैंने उन्हें डाँटा—"अच्छा चुप रहोगे या नहीं ? बड़े अच्छे सम्पादक बने हो। बड़ी अच्छी कला के साथ तुम सम्पादन भी तो करते हो। क्या मुझे मालूम नहीं है कि तुम अंग्रेजी पत्रों के लेखों की हूबहू नकल किया करते हो ! हिन्दी के पाठक

बेचारे, इन सब बातों को क्या समझें। भाई ऐसी कला तुम्हीं को मुबारक हो!"

मेरी फटकार पर लालाजी चुप तो जरूर हो गये। पर स्वयं मैं इस बात को कहकर खेद का अनुभव करने लगा। मित्रता के नाते लाला खराबदास को जो चाहे बुरा-भला कह लूँ, पर मैं उनकी सम्पादन-कला का कायल अवश्य हूँ। वे जिस ढंग से सम्पादन करते हैं, तथा उसमें मौलिकता जिस प्रकार कूट-पीट कर तथा ठूँस-ठाँस कर भर देते हैं, उस प्रकार यदि म्युनिस्पैलिटियों के मेम्बरगण सड़कों के अन्दर मसाले भरवाते, तो व्यर्थ ही उनके सिर बदनामी का सेहरा क्यों बँधता! लाला खराबदास जो टिप्पणी भी लिखते हैं, वह मार्के की होती है। एक बार आपके पत्र में यह सम्वाद छपा था—मिस्टर ग्रेटागार अपनी पत्नी ग्रेटागार्बो के साथ भारत आ रहे हैं।" इस सम्वाद को पढ़कर सिनेमा जगत में काफी आलोचना प्रत्यालोचना होती रही, और उसके द्वारा यह प्रश्न उठाया गया—

सम्पादक पटवारी ने यह अनर्गल सम्वाद किस प्रकार छाप दिया कि मिस्टर ग्रेटागार ग्रेटागार्बो के पति हैं या मिसेज ग्रेटागार्बो ग्रेटागार की पत्नी हैं। लाला खराबदास ने उत्तर छापा था—ग्रेटा-गार्बो से मेरा आशय सिनेमा अभिनेत्री ग्रेटागार्बो नहीं था। मुझे यह नहीं पता था कि मिस्टर ग्रेटागार भी कोई वस्तु है या उनकी पत्नी भी हैं और वे लोग भारत आ रहे हैं। मैंने अपनी युक्ति से विचार किया था कि जिस प्रकार सोमारू की स्त्री सोमारू-बो,

उसी तरह प्रेटागार की प्रेटागार्यो होगी। आशा है कि पाठक मेरा आक्षेप रहित भाव समझ गये होंगे।"

मैंने सोचा लेख तो लिख सकता हूँ। कला कला के लिये, इस सिद्धान्त की रक्षा करने का प्रयास सफल होगा या नहीं।

पर मैंने कुछ खँचाना शुरू किया—"जिस तरह सतियों में सीता, ग्रन्थों में गीता, पशुओं में चीता और फलों में पपीता का माहात्म्य सर्वविदित है, जिस प्रकार भोजन में भात, फिल्मों में प्रभात, सिनेमाघरों में निशात, बर्तनों में परात, यात्राओं में बारात, मौसमों में बरसात, तथा मन्त्रियों में सिकन्दर हयात की उपयोगिता प्रसिद्ध है, और और''''''अब क्या लिखूँ ? खराबदास ने कहा है—लेख अनुप्रासों से भरा हो, कला से पूर्ण हो, पर अब अनुप्रास ही नहीं मिल रहे हैं। 'बेताब' का प्रासपुञ्ज देखूँ क्या ? पर उसमें तो शायद 'नवोढ़ा' का तुक 'घोड़ा' से मिलाया गया है। उससे क्या काम निकल सकेगा ? तब...तब...तब...?

तब क्या लिखूँ ? 'लिखूँ समुद्ररूपी सागर में उपकार की भलाई से युक्त जो प्राणी मनुष्य न होकर 'आदमी ही रह जाता है उसकी जुगुप्सा निन्दनीय है।" अयँ ! यह क्या हो गया। यह तो मैं भी खुद नहीं समझ पाया। बस बस, यही तो वर्तमान कला है और इसी में "कला कला के लिये" नामक सिद्धान्त की परिपुष्टि भी होती है। भले ही कोई इसे न समझ पावे !

और यदि कोई समझ ही पावे, तो उसके अन्दर कला ही क्या रही और उसका महत्व ही कौन स्वीकार करेगा ?

ऐसा सोचते ही मैं ठहाका मार कर हँस पड़ा। चौंक कर जागा तो देखा श्रीमती जी पूछ रही हैं—"सपना देख रहे थे क्या ? हँसते क्यों थे ? उठो सबेरा हो रहा है ?"

छड़ी बनाम सोटा

घटना कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम की है !

सन् १६३८ की ही बात है ! नवम्बर का महीना था। मैं म्यूजियम में बैठा हुआ आर्कियोलोजिकल सर्वे नामक पत्र पढ़ रहा था। मोहेन्दोजारो की खुदाई से इस बात का पता चल रहा था कि ईसा के ५००० वर्ष पहिले भारतीय सभ्यता का विकास कहाँ तक हो चुका था ! ५००० वर्ष ! वाह, यह तो काफी लम्बी अवधि है ! उस समय भारत काफी उन्नतिशील था। तब तो यह निश्चय ही है कि भारतवर्ष में सभ्यता का आरम्भ इससे पहिले ही हो गया रहा होगा ! अर्थात् ५००० वर्ष के और भी पहिले भारत सभ्य था।

अब मैं इस बात की उधेड़बुनमें लग गया कि भारत में ५००१ वर्ष बी० सी० में (ईसा के पहिले) किस प्रकार की सभ्यता थी।

मैं विचारों के प्रवाह में इतना तन्मय हो रहा था कि अकस्मात् जोर से अपना हाथ सामने की टेबुल पर पटक कर मैं चिल्ला उठा—क्यों, भारतवर्ष में ५००१ बी० सी० में किस प्रकार की सभ्यता थी !

संयोगवश उसी दिन देहरादून के अजायब घर से एक छड़ी और एक सोंटा हमारे कलकत्ता संग्रहालय में भेजे गये थे। वे दोनों अभी मेरे टेबुल पर ही रक्खे हुए थे कि हाथ पटकने से वे दोनों जमीन पर जा गिरे!

मैंने छड़ी और सोंटे को यथास्थान रखते हुए फिर जोर से कहा—लेकिन यह जानने का भी प्रयत्न करना बुरा न होगा कि आज से ५००१ वर्ष बाद अर्थात् ५००१ ए० डी० में भारत की सभ्यता का क्या रूप हो सकता है? आर्केलोजिकल विद्या के प्रभाव से यदि यह समस्या भी हल हो जाय तो कितनी सुन्दर बात होगी।

शिला लेखों के अक्षरों को पढ़ने और उनके अर्थ निकालने में मैंने अपनी आँखों पर काफी अत्याचार किया था। संस्कृत और पाली के अनेक जटिल श्लोक मार्ग में विघ्न बनकर डण्डा लिए खड़े थे। उन सबके अर्थ मैंने कुछ अपने श्रम तथा कुछ पण्डितों की सहायता से समझने की चेष्टा की थी। बी० ए० मैं पर्शियन लेकर पास था! बी० ए० के बाद मैंने निजी तौर पर संस्कृत पढ़ना शुरू किया था। उन दिनों बड़े मजेदार पण्डितों से भेंट हो जाया करती थी। एक पण्डित थे! देशके अच्छे सार्वजनिक कार्यकर्ता भी थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि उन्होंने मुझे समय 'कस्तूरीतिलकं ललाटपटले' का अर्थ बतलाया था कि 'कस्तूरी (बाई) (लोकमान्य) तिलक को लेकर लाट के पास गयीं और तिलक जी से बोलीं कि पटले याने जो कुछ भी हो।

समय ये स्वराज्य के नाम पर दे रहे हैं उसे फौरन ले लो!

आखिर लाचार होकर मैंने अपने बल पर ही संस्कृत पढ़ना शुरू किया और धीरे-धीरे बहुत कुछ सीख लिया।

अतएव इस अवसर पर भी मैंने यही तय किया कि बिना किसी अन्य विशेषज्ञ की सहायता के मैं भारतीय सभ्यता के भूत और भविष्य का पता लगा कर ही छोड़ूँगा।

दिनभर अन्य कार्यों में व्यस्त रहने से मैं इस विषय को भूल सा गया। रात मैं चुपके से 'रेनाल्ड' का एक उपन्यास पढ़ते पढ़ते सो गया।

अकस्मात् देखता क्या हूँ कि टेबुल के ऊपर कुछ फुस फुस बातचीत हो रही है। मैंने तिब्बत में एक साधु से पशुपक्षी तथा निर्जीव वस्तुओं की भाषा का काफी अभ्यास किया था! फलतः मैं कान लगा कर सुनने लगा!

सोंटा कह रहा था—अजी मिस छड़ी जी, जरा इधर तो आइये। बेतरह जाड़ा लग रहा है! तिसपर आज क्यूरेटर साहब की कृपा से, टेबुल से जमीन पर गिर कर चोट भी खा चुका हूँ। मिस छड़ी बोलीं—वही तो, तुम तो गधे की तरह मोटे होने से कम ही चोट खाये होगे, यहां तो कमर ही टूटी जा रही है! बच्चू चले हैं ५००० वर्ष आगे और पीछे की सभ्यता का पता लगाने! जानते नहीं कि दोनों सभ्यताओं के प्रतीक हम दोनों यहाँ उपस्थित ही हैं।

'हाँ वही तो! बात तो तुम सच कह रही हो। पिछले दस

हजार वर्षों से युवक समाज पर हमारा प्रभुत्व रहा है। अब बहुत दिनों तक तुम्हारा प्रभुत्व रहेगा। लोगों के हाथ ही इतने दुर्बल हुए जा रहे हैं कि वे मेरा भार सम्हाल ही नहीं सकते।

सोंटा फिर कहने लगा—बीबी छड़ी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज कल के कालेज के नौजवानों ने दफ्तरके बड़े बाबुओं तथा दुर्बल हृदय हाकिमों के हाथों में अपनी नाना प्रकार की सखियों के साथ तुम्हारा ही समाज विराजमान है, पर कभी वह युग भी था जब कि भारत के दस दस बारह बारह साल के बालक मुझे लेकर कोसों की दौड़ लगाते थे!

यह मैं ५००१ बी० सी० की बात कह रहा हूँ। उस समय रुपये का दस मन घी बिकता था। आज दस छटाँक शुद्ध घी भी मिल नहीं सकता। मुझे यह भी याद है कि उस समय आजकल की तरह म्युनिस्पल्टियाँ नहीं थीं। घी के व्यापारियों का कोई डेपुटेशन प्रधानमन्त्री से मिलने नहीं जाता था, फिर भी घी शुद्ध मिलता था। हाँ जी बीबी छड़ी, ऐसा घी कि किसी के घर में छटाँक भी गर्माया जाय तो गाँव भर में सुगन्ध फैल जाय!

और उस घी के खाने से उस समय पाणिनि और पतञ्जलि सरीखे मेधावी मनुष्य उत्पन्न होते थे! सदाचार और ब्रह्मचर्य की चमक से सबके चेहरे लाल रहा करते थे! और आज तो नर-नारियों की पहिचान तक नहीं रह गयी है!

छड़ी बोली—है क्यों नहीं। जिसे ऊँची एड़ी का जूता पहिने देखो उसे नारी और जिसे नीची एड़ी का पहिने देखो उसे नर मान लो।

सोंटा बोला—हाँ देवी ! ठीक कहती हो ! मैं तो एकदम भ्रम में ही पड़ गया था ? अस्तु उस समय की स्त्रियों की बात सुनो ! वे विदुषी होती थीं ! पर जहाँ तक मुझे स्मरण है कि उन लोगों ने कभी अपनी कोई सोसायटी स्थापित नहीं की और न तो उन्होंने कभी कोई प्रस्ताव ही पास किये !

छड़ी ने बीच में ही बात काट कर कहा—तो बुढ़ऊ, इसमें तुम्हें कष्ट होने की क्या जरूरत है। अभी उस दिन दिल्ली के महिला सम्मेलन में श्रीमती उमा नेहरू ने स्त्रियों के लिए काम-कला की शिक्षा देने की योजना पेश की थी !

"हाँ सो तो मैं भी समझता हूँ। सीखें वे लोग काम-कला ! पर हाँ, यह बात ठीक है नहीं।

अजी तुम पुराने पोंगापन्थी हो ! क्या लचर दलीलें पेश करते हो ! इस विज्ञान के युग में तुम सबको प्रगतिशील होने से नहीं रोक सकते ! अब घर २ रेडियो हैं ! बेतार का तार है। टेलिफोन हैं ! यह सब था तुम्हारे यहाँ पहिले ? पति परदेश गया है ! नायिका करवटें बदल रही हैं। कहीं भौंरों को, कहीं कबूतर को, कहीं बादल को, कहीं नाइन को काल्पनिक अथवा सत्य दूत बना कर भेज रही है ! विरह की आग जली जा रही है। और अब ! अब घर बैठे टेलिफोन से बात कर ली। बेतारका तार भेज दिया ! यह सब नहीं तो रेलगाड़ी पर चढ़कर स्वयं पतिदेव के निकट जा पहुँची।"

"ऊँह, क्या नाम लिया तुमने ! जरा ५००० वर्ष पहिले की

बात याद करो ? उस समय रेलगाड़ी न थी तो क्या ! बैलगाड़ी तो थी ! और प्रेम तो भइया विरह से ही पुष्ट होता है । मैं मानता हूँ कि विज्ञान के रेडियो आदि यन्त्रों ने चमत्कार पैदा कर दिया है ! ५००० वर्ष बाद ऐसी साइकिलें बनेंगी जिनपर रेडियो, और टेली-फोन भी लगे रहेंगे और स्त्रियाँ उनपर बैठकर हवाखोरी के लिए जाया करेंगी । पति लोग घरों में बैठकर रसोई पकावेंगे और साथ ही बोतल के अन्दर पड़े हुए बच्चों को पालेंगे भी, कारण उस समय बच्चे इतने छोटे होंगे कि वे बोतलों में पाले जा सकेंगे । श्रीमती जी बाजार में से ही पूछेंगी—"डियर खाना तय्यार है ?" उत्तर में पतिदेव कहेंगे—हाँ ! श्रीमतीजी आज्ञा हो तो परोसूँ ?

"तो बुरा क्या है ?" बुड्ढी बोली" समय परिवर्तनशील है । ५००० वर्षों से पुरुष जाति स्वाधीनता के मजे लेती चली आरही है ! औरतें धुएँ में अपने नेत्र फोड़ें और पुरुष सिनेमा और क्लबों में मजे लूटें ! अब पुरुष जाति के पापों का घड़ा भर गया है ! अब नारियाँ अपना अधिकार वापस लेंगी । ५००१ वर्ष. बी. सी की सभ्यता अब यों ही चीण पड़ रही है, ५००१ ए. डी. में वह ठीक उल्टी हो जायगी और इन दोनों समय की सभ्यता में उतना ही अन्तर हो जायगा जितना कि इण्डिया और इंगलैण्ड, जगत् गुरु शंकराचार्य और मिस्टर जिन्ना तथा चीन और जापान में है ?"

मेरी नींद खुल गयी ! मैं उठ बैठा ।

मेरा घर ही प्रदर्शिनी है

भाई बहिन में सलाह हो रही थी—"उनसे कहो आज प्रदर्शिनी दिखा लावें।" दिनभर के षड्यन्त्र के बाद मेरे छोटे साले साहब श्री गौरांग मोहन सन्ध्या के पाँच बजे मेरे 'रीडिङ्ग रूम' में जलपान की थाली लेकर उपस्थित हुए और तश्तरी रखते हुए बोले—जीजा जी, चलियेगा नहीं आज प्रदर्शिनी देखने ! कहिये तो जीजी को भी चलने के लिए राजी करूं।"

यह खूब रही। "जीजी को चलने के लिए राजी करूँ।" मानो जीजी बिचारी जाना ही नहीं चाहती हैं और उन्हें चलने के लिए राजी करना पड़ेगा। यह वे मेरे ऊपर उपकार करेंगी जो चली चलेंगी।

यद्यपि मुझे सबेरे से ही इस षड्यन्त्र का पता पड़ा था, फिर भी मैंने अनजान सा बन कर कहा—गौर देखते तो हो, मुझे इस समय तनिक भी अवकाश नहीं है ! मैं अपने उपन्यासका सातवाँ परि-

च्छेद समाप्त करने में लगा हुआ हूँ। यदि इस समय चलूँगा तो फिर इस अच्छे ढंगसे यह परिच्छेद लिख न सकूँगा। तुम जाकर अपनी जीजी को राजी कर लो। जाना चाहें लिवा जाओ। मैं तो चल न सकूँगा।

गौरांग कुछ हतप्रभ होकर बोला—तो अब आप ही न जायेंगे तो मैं जाकर क्या करूँगा। और जीजी ही क्यों चलने लगीं। उपन्यास फिर लिख लीजियेगा। प्रदर्शनी में जाने से आप का उत्साह दूना हो जायगा!

यद्यपि गौर ने इसे दूसरे भाव से कहा था, पर मैंने उसकी चुटकी लेते हुए कहा—इसमें क्या सन्देह! उत्साह तो बढ़ता ही है, तभी तो कालेजों के नवयुवक वहाँ गिद्ध की तरह मँडराते रहते हैं। पर भई, मैं ऐसी इन्स्पिरेशन का प्रायः नहीं हूँ। फिर मैं तो प्रतिदिन ही उस प्रदर्शनी से अच्छी प्रदर्शनी घर में ही देखा करता हूँ!"

गौर का आश्चर्य भरा, प्रश्नसूचक मुखमण्डल देख कर मैंने पुनः कहना शुरू किया—

"देखो गौर, मेरी प्रदर्शिनी कितनी अच्छी है। यहाँ किस बात की कमी है!

दिनभर में पन्द्रह बार, पन्द्रह तरह की साड़ियाँ बदल कर जब तुम्हारी जीजी मेरे पास से होकर निकलती हैं, तो मालूम होता है कि बनारसी और अहमदाबादी दूकानों के 'स्टाल' सजे हुए हैं। तुम्हारी दीदी जिस समय मेरे कमरे में आ जाती हैं तो मालूम होता है कि एक साथ ही बिजली के दस हजार लट्टू जल उठे

हैं। लड़के जब मिठाई देने पर भी किंग रीडर पढ़ना छोड़ कर आपस में लड़ते हुए शोर गुल करने लगते हैं तो यही मालूम होता है कि मुशायरा हो रहा है। बीनू जब श्याम की मिठाई छीन लेता है, और वह धीरे धीरे फिर जोर से रोने लगता है तो यही मालूम होता है कि बंगाली संगीत-समिति अब संगीत का प्रदर्शन कर रही है! फिर जिस समय तुम्हारी दीदी आकर बच्चों को चटाख पटाख पीटना शुरू कर देती हैं, उस समय स्पष्ट मालूम होता है कि आतशबाजी शुरू हो गयी है! उसके बाद जब तुम्हारी दीदी आकर बच्चों के सारे दोषों के लिए मुझे जिम्मेदार बतलाती हुई, अमर कोष के चुने हुए शब्दों से मेरा सम्बोधन करने लग जाती हैं, तो मैं हतबुद्धि और स्तब्ध होकर यही समझने लगता हूँ कि 'इस समय कवि-सम्मेलन हो रहा है और मेरे सामने कोई छायावादी कविता पढ़ी जा रही है।

इसी बीच जब तरकारी लेकर कुंआरा की माई घर लौटती है, और किनहा बैगन देने के कारण, जिसे बाजार में पहिचानने की बुद्धि उसने खर्च न की थी, कुँजड़े के सात आगे और सात पीछे की पीढ़ियों का श्राद्ध करने लगती है, तो मैं बिना बतलाए ही समझ जाता हूँ कि किसी समाजवादी नेता का भाषण हो रहा है और जीर्ण शीर्ण साम्राज्यवाद का महल अब ढहा चाहता है।

रात में जब बुड्ढा फेंकू खौंय खौंय करके खाँसने लगता है तो मैं समझ जाता हूँ कि लाउडस्पीकर ठीक तरह से काम कर रहा है। कुत्ते की भौं भौं मुझे होटल के बैण्ड बाजे से कम सुखद

नहीं प्रतीत होती है। रात दस बज जाने पर भी जब श्रीमती जी मेरे कमरे के अन्दर नहीं तशरीफ लातीं तो मैं सोचने लगता हूँ कि क्या मेरा कमरा 'कृषि विभाग' तो नहीं है ! और—

"अच्छा अच्छा ! तुम्हें न जाना हो तो न जाओ ! लड़के के सामने यह क्या ऊल जलूल बक रहे हो ? यह क्या डुग्गी पीट रहे हो ? किसी प्रदर्शिनी में यह काम, डुग्गी पीटने और नोटिस बाँटनेका कर चुके हो क्या ?—कहती हुई श्रीमती जी कमरे में पिल पड़ीं।"

मैं घबड़ा गया। चाहा कि उनके मुखचन्द्र की ओर नेत्र चकोरों को प्रेरित करूँ, पर यह जानकर कि ये इस समय बेहद नाराज हैं, कुर्सी से उठकर स्वागत करने के बजाय, मारे हड़बड़ी के मैं टेबुल के नीचे घुस गया। जब होश हुआ, और बाहर निकला तो देखता हूँ कि भाई बहिन दोनों बेतहाशा हँस रहे हैं।

कवि सम्मेलन

यदि मुझसे कोई पूछे तो यही कहूँगा कि इस समय संसार में जितने रोग फैले हुए हैं, उन सब में 'कविसम्मेलन' नामक रोग सबसे बड़ा है। जहाँ देखिये तहाँ कविसम्मेलन और जब देखिये तब कविसम्मेलन! और रोग तो स्थान और समय के पाबन्द हैं, पर यह कविसम्मेलन नामक रोग जो है सो किसी की परवाह नहीं करता!

चाहे नागरी प्रचारिणी सभा का वार्षिकोत्सव हो या हरिजन संघ का चुनाव, चाहे मिनिस्टर साहब का आगमन हो या पेशकार साहब की विदाई, चाहे शिक्षा सप्ताह का समारोह हो या सोन-पुर की पशु-प्रदर्शिनी, चाहे पण्डित मुलई राम का गौना हो या मुंशी घुसई लाल की बरसी, कविसम्मेलन हर अवसर पर एक ही रंग ढंग से पहुँच जाता है।

कविसम्मेलन को न तो गरीब का ख्याल रहता है न अमीर

का, उसे न तो महल का विचार है न झोपड़ी का, जब चाहिये और जहाँ चाहिए, इसे कर लीजिये। और सब कार्यों में दिन बार, मुहूर्त आदि का भी विचार होता है। पर कविसम्मेलन इन सबसे परे है।

कवि सम्मेलन में समस्या-पूर्ति एक प्रधान अंग होती है। समस्याओं की पूर्तियाँ भी एक से एक अजीब सुनने में आती हैं। मुझे एक बार ठाकुर चुनमुन सिंह की नतिनी के मुण्डन में एक कविसम्मेलन में सम्मिलित होने का अवसर मिला था। वहाँ की समस्याओं में एक समस्या थी 'गये'। वहाँ काशी के प्रसिद्ध कवि बुलाकीराम भी आये थे। बुलाकी राम जी ने 'गये' समस्या की जो पूर्ति की थी वह यह है—

लड्डू मोतीचूर थे मँगाये मैंने पावभर,
सुखद सुगन्ध में थे नासाछिद्र आ गये।
सोचा इन्हें खाऊँगा नहाके, या अभी मैं खाऊँ,
मुख बीच पानी के प्रवाह उमड़ा गये !!
इतने में औचने मुकदमा पड़ोस ही में,
मेरे मित्र माधोसिंह थानेदार आ गये !
मेरे अंश में न पड़ा लड्डुओं का खाना क्योंकि,
दानेदार लड्डू सभी थानेदार खा गये !!

एक समस्या थी 'धोखा है'।

पंडित बुलाकी राम ने उसकी पूर्ति इस प्रकार की थी—

भाई, जो गदाई है खुदाई है कभी न वह,
होते हुए दौलत के भी वह दंतखोड़ा है !
नाक होते हुए भी परम नकटा है वह,
पाँव रहते भी वह लंगड़ा निगोड़ा है !
नस नस में है बदमाशी उस आदमी के,
जैसे तरकारियों में रेशेदार थोड़ा है !
सधा बधा साधु बनने को वह बना करे,
सुकवि बुलाकी वह गधा न घोड़ा है।

इसी प्रकार एक सम्मेलन में एक समस्या थी—'होती' ! इसकी पूर्ति पण्डित बुलाकी राम ने इस प्रकार की थी—

मैं भला दुनियाँ में करता कौन काम,
साथ में मेरे नहीं जो तुम होती !
नारियाँ घर से निकलतीं तब नहीं,
एक एक उनके लगी जो तुम होती !

कविसम्मेलन का दृश्य बड़ा विचित्र होता है ! कहीं 'झोंटा वाले कवि, कहीं मुण्डित मुण्ड महाकवि, कहीं पान से भरे मुँह वाले दर्शक, कहीं चिल्लपों मचाते हुए बालक को चुप करती हुई महिला दर्शक,—

भगवान् करें भारत में वह समय शीघ्र आवे जब घर घर कवि सम्मेलन हों, और प्रत्येक बालक कवि हो, कारण बिना कवि सम्मेलन हुए कुछ भी प्रकट नहीं होते।

कवि की दुर्दशा

हमारे कविजी मिर्जापुर में रहते रहते ऊब गये थे। सोचा, लोग दिलबहलाव और जलवायु-परिवर्तन के लिए विलाइत तक की दौड़ लगाते हैं, तब मैं भी क्यों न कहीं घूम फिर आऊँ।

कविजी थे तो कवि पर, तहसीलदार साहबके इजलासमें पेशकार का काम करते थे। संयोगवश तहसीलदार साहब की बदली गोरखपुर के लिए हो गयी। कविजी ने भी प्रार्थनापूर्वक गोरखपुर चलने का उपाय कर लिया।

लोगों ने कहा—गोरखपुर साक्षात् स्वर्ग है! पर्वतराज हिमालय की तराईमें बसा होने के कारण बड़ा ही पवित्र और रमणीक स्थान है। स्थान स्थान पर हरे भरे वृक्षों की पंक्ति लहराती रहती है! आप कवि हो! आपके लिये तो वहाँ कविता के प्राकृतिक और अप्राकृतिक मसाले सभी कुछ उपलब्ध हो सकेंगे!

कविजी ने बीच में ही टोंक कर पूछा—अप्राकृतिक मसाला

क्या ? बाबू हुरपेटनदास ने कहा—अरे महाराज ! धनियाँ, हींग, मेथी, मिर्चा, और क्या ! आप गरम मसाले तरकारी में नहीं छोड़ते क्या !

शास्त्री जी ने रोका—नहीं 'नहीं, अप्राकृतिक मसाले से मेरा यह तात्पर्य न था ! नाना प्रकार के जीव जन्तु भी आपको वहाँ मिलेंगे, जो एक प्रकार से प्राकृतिक होते हुए भी अप्राकृतिक ही हैं।

बाबू हुरपेटनदास ने नाराज होते हुए कहा—महाराज शास्त्री जी, फिर आपही बताइये कि वे कौन से जीव जन्तु हैं जो प्राकृतिक होते हुए भी अप्राकृतिक है ?

शास्त्री जी बोले—बाबू जी, वे हैं मच्छड़ और निरच्छड़, रेता और नेता, दाई और हलवाई, लकड़ी और मकड़ी, खरबूजा और मकभूजा, ताड़ी और मारवाड़ी, धनिया और बनिया—

"बस बस शास्त्री जी—"—बाबू हुरपेटनदास तड़पते हुए बोले। आप बेनकेल के ऊँट, बे लगाम के घोड़े, बिना ब्रेक की साइकिल, बेपेंदी के लोटा, बे चिमनी की लैम्प, और बे धोबी के गधे की तरह बेहिसाब चले जा रहे हैं। आज अधिक भांग पी ली है क्या ?

शास्त्री जी बोले—भाँग, भइया भाँग कहाँ पावैं जो पियें ! ई कांगरेस गवर्नमेण्ट के मारे भाँग बचने भी पावेगी ! हाँ अलबत्ता गोरखपुर में जहाँ कवि जी जा रहे हैं वहाँ भाँग सस्ती है, कारण वहाँ की पृथ्वी ही भाँग-प्रसविनी है। किसी ने गोरखपुर रह कर ही लिखा था—'कूप ही में यहाँ भाँग परी है" !

कवि जी हैं बड़े ही मस्त आदमी। जब उन्होंने सुना कि गोरखपुर में भाँग सस्ती मिलती है तो वे परम प्रसन्न हुए ! बोले—

मालूम होता है पर्वतराज हिमालय ने शंकर जी की पहुनई में कोई त्रुटि न होने देने के विचार से ही गोरखपुर की तराई में भाँग की खेती कराई है। सो भइया बड़ा नीक बाटे। भला प्रसाद रूप में विजया की प्राप्ति तो होत रहिये।

कवि जी से बढ़ कर भाँग के प्रेमी जीव हैं उनके कक्का। वे तो इस समाचार से उछल ही पड़े। बोले—बचऊ, बड़ नीक कीन्ह्यो! गोरखपुर बदली कराइ लीन्ह्यो। हमहूँ चलबै। लिआय चलिहौ न!

बेचारे कविजी और उनके कक्का को क्या मालूम कि गोरखपुर कैसा शहर है। नहीं तो सम्भवतः वे लोग इतना अधिक न उछलते। उन्हें क्या पता कि गोरखपुर इस भारतवर्ष के अन्दर होनो लू लू या मोरक्को से कम सुन्दर स्थान नहीं है!

पर जब कक्का ने यह सुना कि इस बार सिर्फ कविजी ही अकेले अकेले जा रहे हैं, परिवार अभी मिर्जापुर में ही रहेगा, तो वे ठक से रह गये!

कविजी के साथ उन्हें खाने पीने का बड़ा सुपास रहा करता था। वे रोज दो पैसे की पत्ती छान जाते थे। उसके बाद भोजन के साथ उनके लिए दूधका प्रबन्ध उतना ही जरूरी था जितना कि अंग्रेजों के साथ कुत्ते का रहना या कांग्रेस-मेम्बर होने के लिए चवन्नी चन्दा देना। जिस तरह कांग्रेस का मेम्बर होनेके लिए और किसी आवश्यकता की जरूरत, सिवा इस चवन्नी के नहीं होती, उसी प्रकार कक्का के भोजन में तरकारी, चटनी, मूली [redacted]आलू

आदि उतने आवश्यक नहीं जितना कि दूध है। पूरी कटोरी का पावभर दूध गले के नीचे उतार कर वे कड़ाही की ओर उसी प्रकार सतृष्ण नेत्रों से देखते हैं जिस प्रकार बिल्ली पिंजड़े में बन्द चूहे पर, या रेलवे कर्मचारी किसी डेवढ़े दर्जे में अकेली बैठी हुई सुन्दरी युवती को, या मोची, रास्ते में आते जाते हुए लोगों के फटे जूते को !

पावभर दूध पीकर कक्का कहते—बचऊ ! इतने दूध से का होत है। इतने में तो कण्ठ सींचा जात है। तोहरी उमर का जब हम रहे तो सवा दो सेर दूध एक साँस में पीकर राम लोटा धरती पर रक्खत रहे !" मतलब यह कि बिना दूसरी कटोरी का दूध समाप्त किये कक्का उसी प्रकार पीढ़े पर से उठने का नाम नहीं लेते थे जैसे बिना इनाम पाये कलेक्टर साहब का खानसामा, या बिना अपना नेग लिये हुए नाइन !

तनिक कल्पना तो कीजिये। आपका तिलक चढ़ गया है। परसों आपकी विवाह होनेवाला है। कल बरात लेकर आप जाने वाले हैं। अकस्मात् तार आता है—कन्या के चचा का देहान्त हो गया। विवाह अगले साल होगा" ! बताइये आपके चित्त की दशा ऐसी अवस्था में किस प्रकार की होगी। अथवा किसी नौकरी के लिए आपने आवेदन पत्र भेजा है। कमेटी के सब मेम्बरों ने आपके लिए वचन दिया है। आपको विश्वास है कि नियुक्ति पत्र कल आपको मिल जायगा। इतने में आप अखबारों में क्या पढ़ते

हैं कि वह पद ही तोड़ दिया गया ! अब आप का हृदय कुड़बुड़ा-हट का अनुभव करेगा या नहीं।

तब भला कक्का को यह जानकर आश्चर्य और दुःख क्यों न हो कि वे इस यात्रा में गोरखपुर नहीं जाने पावेंगे अर्थात् इस बार पता नहीं कि कब तक के लिए उन्हें मिर्जापुर में ही पड़े रहना पड़े ! फिर कविजी के गोरखपुर रहने के समय उनके खान पान का ठीक २ व्यवस्था कौन करेगा ? दो चार दिन के लिए भी जब कविजी बाहर चले जाते हैं तो कक्का को किसी कमी का अनुभव होने लगता है। दूध उन्हें मिलता है उतना ही अवश्य, पर उसके स्वाद में उन्हें किसी प्रकार का भेद मालूम पड़ता है। तरकारी में उन्हें मिर्चे अधिक और घी मसाले कम दिखायी पड़ते हैं, जिसके कारण वे तरकारी दुबारा नहीं माँगते। पता नहीं बचऊ की अनुपस्थिति में तरकारी ही अपना स्वभाव बदल देती है या उसकी बनानेवाली ! अस्तु।

कविजी-गोरखपुर चले गये ! वहाँ जाने के साथ ही तहसीलदार साहब के रसोइयाँदार महराज को जूड़ी ने ऐसा दबाया कि उन्हें खाट पकड़नी पड़ी। दूसरा रसोइयाँ कहाँ मिले। वही महराज बनाता था और कविजी भी उसी रसोई में भोजन करते थे। दूसरा सुपात्र ब्राह्मण इतनी शीघ्रता में कहाँ मिले। फलतः कविजी को ही रसोई बनाने का काम स्वीकार करना पड़ा !

तहसीलदार साहब थे तो बंगाली पर थे निरामिषभोजी ! मछली छोड़े उन्हें सालों हो गये थे। पर भात वे खूब खाते थे।

कविजी को रोटी बनाने नहीं आती थी। वे केवल दाल भात और तरकारी ही बना पाते थे। किन्तु भोजन का अधिक भाग बंगाली महोदय स्वाहा कर जाते थे! एक दिन तो माँग माँग कर वे सभी भोजन चट कर गये!

एक दिन बंगाली महोदय डट कर भोजन कर रहे थे। छतपर, मूर पर बैठा हुआ एक दीर्घकाय बन्दर टकटकी लगा कर उन्हें भोजन करते हुए देख रहा था। हमारे कवि जी छत के दूसरे कोने पर चुपके चुपके जा पहुँचे और वहीं से कविता में ही बन्दर से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।

मेरे बन्दर ! मेरे बन्दर !
क्यों बैठे हो छत के ऊपर !
आ जाओ तुम नीचे भूपर !
घर बन्दर, मेरे बन्दर !!
मेरे बन्दर तुम कूद पड़ो,
इस दाल भात की थाली पर !
मेरे बन्दर तुम बरस पड़ो,
इस बेवकूफ बंगाली पर !
मेरे बन्दर तुम टूट पड़ो !
इस भण्टे की तरकारी पर !
मेरे बन्दर तुम उछल पड़ो !
इस मजनूरनी सोमारी पर !!
आओ बन्दर, मत करो देर !

यह हड़प सभी जाओ बण्डा !
भागो बन्दर, बुढ़वा टेसुआ,
अब आता है लेकर डण्डा !!

पता नहीं बन्दर ने कवि जी की कविता को समझा या नहीं, पर यह आवश्यक है कि उसने बंगाली बाबू पर हमला कर ही दिया और दो मुट्ठी भात उठा ले गया !

रात होने पर कवि जी को मच्छर बहुत सताते थे। कुर्सियों में खटमल पड़ गये थे। जिस सड़क पर निकल जाते थे उधर कोसों तक कतवार ही कतवार दृष्टिगोचर होता था। दो तीन बार मलेरिया के आक्रमण का भी सामना करना पड़ा। इतने में सुना गाँवों में प्लेग आ गया है ! बेचारे की घबराहट की सीमा न थी !

कक्का ने दस दिन तो किसी तरह मिर्चों से भरी तरकारी और विशुद्ध पानी मार्का दूध पर काटे, पर अब उनसे न रहा गया। फलतः मुहल्ले के फेंकई कोहार से ५) रु० उधार लेकर आप गोरखपुर के लिये रवाना हो ही तो गये !

कविजी गोरखपुर के जलवायु और वहाँ की रहन-सहन से ऊब कर छुट्टी के लिए आवेदन पत्र लिखने जा ही रहे थे कि ठीक ग्यारहवें दिन उनके कक्का उनके सामने स-शरीर उपस्थित हो गये ! कक्का को देखकर हमारे चरितनायक इतने जोर से चौके की चौकी पर से गिरते गिरते बचे ! बारे उठकर उनके पैर छुए और बिठला कर हँसते हुए पूछा—कक्का बड़ी जल्दी कीन्हो ? काहे अकेले चले आयो !"

कक्का बोले—बचऊ पूछौ जिन ! तुम्हरे बिन तबियतै ना लागत रही। यही मारे हम भागि आगे ! "नीक कीन्ह्यो कक्का ! पर अभी नहीं आवै चाहत रहा। कारन हम खुदै इहाँ से भागन की फिकिर माँ हैं।"

"काहें काहें बचऊ ! कवन विपत परी ! कोनो तकलीफ होथै का ?" कक्का ने घबड़ा कर कहा !—'गोरखपुर अच्छा सहर नैखे जनात। का बचऊ कैसन पायौ ई सहर के।"

कविवर बचऊ ने कहा—

त फिर सुनिही लेहु—

भन भन भन का निनाद झन झन जहाँ,

घन की घटा से भी बनावली सघन है।

कूड़े करवार की बहार सड़कों पे दिव्य,

बेशुमार बाजों का अजीब अञ्जुमन है।

दस रुपयों का कह बेचते दुअन्नी पर,

ऐसे मोलभाव का महान मधुबन है।

वृन्दावन मच्छरों का, मक्का यह मक्खियों का,

कक्का यह यू० पी० का अनोखा अप्डमन है।

जीजा-जीवनी

सन्ध्या का समय था। पाँच बज चुके थे। स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा का हॉल श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। सभी की आँखें उत्सुकता से मुख्य द्वार की ओर लगी हुई थीं। आज पण्डित परसू मिसिर का भाषण होने वाला था। परसू मिसिर का भाषण हो और भीड़ न हो। सो भी उनका आज का भाषण एक महत्वपूर्ण विषय पर होने वाला था। उन्होंने बड़े प्रयत्न से महाकवि जीजा के बारे में अनुसन्धान किया है। उनकी कविताओं की एक हस्तलिखित प्रति भी परसू मिसिर पा गये हैं। आज वे बतलावेंगे कि महाकवि जीजा का हिन्दी-कविता-क्षेत्र में क्या स्थान है!

साढ़े पाँच होगये पर परसू मिसिर न आये? पाँच ही बजे से उनका भाषण प्रारम्भ होने वाला था। ६ बजते बजते परसू मिसिर अपने अड़ियल घोड़े से संयुक्त सड़ियल इक्के पर विराजमान सभा-भवन के फाटक पर पहुँच ही गये।

भूमिका की कार्य्यवाही हो जाने के अनन्तर पं० परसू मिसिर अपना भाषण देने को उठ खड़े हुए। अब तक जो महान कोलाहल लोगों के बारम्बार प्रार्थना करने पर भी शान्त नहीं हो रहा था, वह परसू मिसिर के खड़े होते ही एकदम शान्त होगया। कोई जमुहाई लेता तो उसकी आवाज सुनाई पड़ जाती।

परसू मिसिर ने कहा—सज्जनो, आप लोग विलम्ब से आने के कारण मेरे ऊपर मन में बे तरह नाराज हो रहे होंगे। मैं इसे भलीभाँति समझ रहा हूँ, चाहे इसे आप साफ २ कहें या न कहें। क्यों है न यही बात? अजी आपकी आँखें ही बतला रही हैं कि आप मेरे ऊपर मन ही मन कुड़कुड़ा रहे हैं। पर करूँ क्या, लाचारी थी। एक सज्जन मिलने चले आये थे। उठने का नाम ही न ले रहे थे। गाँव के ही आदमी थे। अस्तु, गाँव हो या शहर सभी जगह कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं जो लोकव्यवहार को जानकर भी, तदनुसार आचरण नहीं करते। ऐसे ही महानुभावों को लक्ष्य करके महाकवि जीजा ने यह कुण्डलिया कही है।

पहुना यदि ऐसे मिले, जिनते होय कलेस।
या तो उन्हें निकारि दे, या खुद छोड़े देस।
या खुद छोड़े देश, क्योंकि ये अति दुख देवैं।
डेरा देयें अरुकाय, टरे का नाम न लेवैं।
कवि जीजा, दुख ऐसन की संगति में रहुना।
धकरि निकारो कान धरे ते ऐसे पहुना॥

सज्जनों! आज मैं आपको इन्हीं महाकवि जीजा की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ बताने खड़ा हुआ हूँ।

महाकवि जीजा ने किस संवत् को अपने जन्म-ग्रहण द्वारा पवित्र किया, इसका यद्यपि कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल सका है, तथापि यह समझना असंगत न होगा कि ये विक्रम की १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध यानी १८५० और १६०० के बीच में उत्पन्न हुए थे। महाकवि जीजा सन् १६०७ में विद्यमान थे, इसका भी पता मिलता है। ये भारतेन्दुके समकालीन कवियों में थे। भारतेन्दु इनका बड़ा आदर करते थे।

जीजा बड़े ही रसिक थे। उन्होंने थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी पढ़ी थी। संस्कृत का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। उर्दू और फारसी में भी दखल रखते थे। डीलडौल से लम्बे थे। सिर से दो अंगुल ऊँची गोजी बाँध कर चला करते थे। मुँह में पान भरा रहता था।

कविवर जीजा ने तो बनारसी बोली में भी कविताएँ लिखी हैं। ये एक बार परदेश गये। वहाँ इन्हें दो एक महीने रह जाना पड़ा। ये ऊब उठे। तबीयत रह रहकर बनारस भाग आने को होती थी। परदेश में ही एक महाजन के यहाँ ये एक दावत में सम्मिलित हुए। अच्छा से अच्छा भोजन सामने परोसा गया। इनसे एक अतिथि ने पूछा—"कहिये आपको भोजन कुछ पसन्द आया?" ये झल्लाए हुए तो थे ही। इन्होंने ठेठ बनारसी ढंग की यह रचना सुना ही तो दी—

"ऐसे ऐसे दावत से भली हो अदावत ही"
हलुआ खिऔलन कि खिऔलन है गुरुच ई।
लपसी के का न कोई पेमा रहल लग्गो,
आज तक नाहीं ऐसन देख पउलीं ढुचई।
भांग बूटी कऽ न तार, मिरिच मसाला नाहीं,
लिट्टू के लजावऽला कचौड़ी कचकुचई।
जीजा कवि वारि डालीं छप्पनो ई व्यञ्जन के,
मिल जाय कासी के कहीं ज बासी लुचई।

इसी तरह एक बार परदेश में ही किसी कवि से इनका विवाद हो गया। उसपर आपने तुरन्त ही उसे पद्यबद्ध शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी।

न हम औ तुम बचा बराबर हैं।
हम तुम्हारे चचा बराबर हैं।
तुम अभी कल के अकबर हो।
हम हुमायूँ के बाप बाबर हैं।
तुम अभी हो नमक सुलेमानी,
हम अकसीर अर्क डाबर हैं।
तुम बिना दुम के एक पिल्ले हो,
हम विलायत के डॉग भाबर हैं।

उपर्युक्त कविताओं से महाकवि जीजा के झगड़ालू स्वभाव का भी परिचय मिलता है। अब उनकी विनोद-प्रियता की भी कुछ बानगी देख लीजिए।

मुझे इस समय केवल एक छन्द याद रह गया है। विद्वानों का मत है कि यही छन्द हिन्दी का प्रथम अतुकान्त छन्द है, और इसी के अनुकरण में छन्दों की सृष्टि हुई।

ओ टिर्री बहू !
बहुत हुआ अब, उठो,
देखो तुम,
पड़ी हुई हो—
खाट पर !
एक सप्ताह से पूरे,
खा रहा हूँ
बाजार की पूरी
उतरता हूँ कराहिया घाट !
तुम्हें क्या ?
तुम तो यों लेटी हुई
मस्ती ले रही हो जी
पीती हो अनार रस
मकरध्वज खाती हो
शुद्ध मधु से !
और मेरी
तुम्बिका समान तोंद
पिचक चली है वेग,
उठो उठो

हुआ ही तुम्हें है क्या
खासी भली चगी हो
उठो
ओ टिरी बहू !!

महाकवि जीजा ने पत्नी पचासा नामक बड़ा ही सुन्दर काव्य-ग्रन्थ लिखा था। उसके कुछ छन्द मैं आपको सुनाता हूँ:—

"यज्ञ किये जो फल मिले, तीरथ विविध नहाय।
पत्नी-पद-बन्दन किये, मिलैं सकल फल धाय॥
रे नर मूढ़ अजान-मन, भ्रमत अमित सब ठौर।
पत्नी सरनागत बनहु, यासों भलो न और॥

अच्छी पत्नी की प्रशंसा में पत्नी पचासा के अन्दर कवि जीजा ने निम्नलिखित छन्द लिखा है, जो प्रत्येक गृहिणी के लिए कंठस्थ कर रखने लायक है:—

सास की ससुर की सुता के सम सेवा करै,
क्रोध का कलेवा करै, अनुराग में रता।
ननद समान राखै ननद सनेह सनी,
देवर को जेवर सरिस मानै महता।
गुरु तुल्य भसुर सदैव मानै सतवन्ती,
पति में ही प्रेम से निबाहै निज सत्यता।
काट सकै संकट के झंझट अनेक वह,
ऐसी प्राप्त होवै जिसे पतनी पतिव्रता।

साथ ही दुष्ट पत्नी की निन्दा में महाकवि जीजा ने यह छन्द भी लिखा है—

सास को पचास उठि जूतियाँ लगावैं नित,
ससुर तुरन्त सुरपुर है पठाये देत।
नद सी ननद को बहाये देत, एकै बेग,
तेवर सौं देवर को दम ही दबाये देत!
असुर समान मान भसुर भगावै भौन,
रार सौं सकल ससुरार सहमाये देत।
वर्त ही कराके कर्कसा यों दिनरात हाय,
भरता बिचारे को है भरता बनाये देत॥

सज्जनों, कवि जीजा के बारे में अभी बहुत कुछ कहना बाकी है, पर काशी कांग्रेस पदर्शिनी में जो कविसम्मेलन होने वाला है, उसका मैं सहकारी सभापति होने वाला हूँ। "अतः आज यहीं तक"—इतना कह कर परसूमिसिर बिना किसी से कुछ-कहे सुने उठकर चलते बने।

प्रोफेसर गड़बड़कर और हिन्दी साहित्य

गोरखपुर की नागरी प्रचारिणी सभा में आज बेहद भीड़ दिखलायी पड़ रही है। कहाँ तो सदस्य लोग बुलवाने से भी नहीं आते थे, कहाँ आज दो घण्टे पूर्व से ही आकर 'सीटों' के लिए मार करते हुए दिखलायी दे रहे हैं। बात यह है कि आज सन्ध्या के ६ बजे से सभाभवन में प्रोफेसर गड़बड़कर का "हिन्दी साहित्य" के ऊपर भाषण होगा। गड़बड़कर जी अभी अभी तिब्बत और चीनी तुर्किस्तान से यात्रा करके लौटे हैं, इसलिए वे यह भी बतलावेंगे कि विदेश यात्रा द्वारा किस प्रकार हिन्दी साहित्य की उन्नति हो सकती है। गोरखपुर वाले बहुत दिनों से प्रो० गड़बड़कर का नाम सुनते आ रहे थे, वे भली भाँति जानते हैं कि महाराष्ट्र होते हुए भी गड़बड़कर जी ने हिन्दी की सेवा का कैसा पवित्र व्रत ले रक्खा है। फिर ऐसी हालत में यदि वह अपार जन-समुद्र उनके मुखचन्द्र के अवलोकनार्थ उमड़ पड़े, तो इसमें आश्चर्य ही क्या।

प्रोफेसर गड़बड़कर के सभाभवन में आने के साथ ही जनता ने खड़े होकर "प्रोफेसर गड़बड़कर की जय" की ध्वनि से उनका स्वागत किया। सभापति मुंशी परेता लाल बी० ए० एल० एल० बी० ने उनकी हिन्दी-सेवाओं का उल्लेख करते हुए कहा कि यह गोरखपुर का भाग्य है कि प्रोफेसर साहब यहाँ पधारे हुए हैं। अब मैं प्रोफेसर गड़बड़कर से प्रार्थना करता हूँ कि वे कृपया अपना व्याख्यान देकर जनता को कृतार्थ करें।"

प्रोफेसर गड़बड़कर ने खाँसते हुए और रूमाल से नाक और चश्मा साफ करते हुए अपना व्याख्यान देना आरम्भ किया। वे बोले—महिलाओ और सज्जनो! आज मेरे लिये बड़े हर्ष की बात है कि आप लोगों ने यहाँ पधार कर 'हिन्दी साहित्य' के सम्बन्ध में कुछ जानने की सदिच्छा प्रकट की है। मैंने तिब्बत और चीनी तुर्किस्तान में जाकर 'हिन्दीसाहित्य' की प्रगति के बारे में जो कुछ अनुभव प्राप्त किया है उसे आपको बतलाऊँगा। आपको मालूम होगा कि मैंने इन पिछले पन्द्रह वर्षों में मद्रास, बिलूचिस्तान और रंगून में हिन्दी प्रचार समिति की ओर से हिन्दी का प्रचार किस हद तक किया है। मद्रास, बिलूचिस्तान और रंगून में हिन्दी प्रचार करने के पश्चात् मुझे इस सद्विचार ने दबाना शुरू किया कि मैं तिब्बत और चीनी तुर्किस्तान जाकर वहाँ भी हिन्दी का झण्डा फहराऊँ। फलतः मैं उन देशों में गया। वहाँ की जनता अब बहुत कुछ हिन्दी के बारे में जानने लग गयी है। मेरी यात्रा के पूर्व वहाँ वाले हिन्दी के विषय में बड़े भ्रम में पड़े

हुए थे। उदाहरण के लिए कुछ बातों का आपके समक्ष उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। प्रोफेसर गड़बड़कर जरा स्थूल शरीर के थे और उन्हें दमा की बीमारी भी थी। इसलिये कुछ देर हाँफने के बाद उन्होंने खाँसते खाँसते कहना प्रारम्भ किया— महाशयो, बिलूचिस्तान और चीनी तुर्किस्तान की बात तो जाने दीजिये, हमारे मद्रास और रंगून में ही हिन्दी के प्रति बड़ा भ्रमात्मक ज्ञान फैला हुआ है। यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अब तक, अपने जन्म समय से लेकर आज तक, मद्रास में प्रचार कार्य्य ही करता रहा है, परन्तु वहाँ वालों की दशा अभी सुधरी नहीं है। यदि आप में से दो चार नवयुवक वहाँ जाकर कुछ उद्योग करें तो सम्भव है कि वहाँ की दशा में कुछ सुधार हो सके।

हाँ, तो मैं क्या कह रहा था ?

हाँ, मद्रास में एक बार एक सार्वजनिक सभा में हिन्दी भाषा की व्यापकता के सम्बन्ध में भाषण कर रहा था। बीच बीच में जनता में से दो एक व्यक्ति उठकर कुछ प्रश्न भी कर बैठते थे और मैं भी अपनी योग्यता के अनुरूप उनकी शंकाओं का समाधान करता जाता था। मैंने वर्तमान समालोचना-शैली की चर्चा करते हुए आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का नाम लिया। इसपर एक मद्रासी सज्जन बहुत प्रसन्न होकर बोल उठे—बस कीजिए साहब बस, उनका नाम मत लीजिए। उन्हें यहाँ कौन नहीं जानता। मद्रास में प्रत्येक हिन्दी प्रेमी उनकी कीर्ति से

परिचित है। वही शुक्ल जी न जिन्होंने भाँग पीकर एक ही रात में 'काव्य में रहस्यवाद' नामक ग्रन्थ लिख डाला था।

इसी प्रकार मैं एक बार भक्तिमार्गी कवियों का वर्णन कर रहा था। जनता में से किसी ने पूछा—महाशय आपके लेखकों में कुछ लोग भूतप्रेत भी मानते हैं। वे क्या प्रेतमार्गी शाखा के कवि हैं। बा० रामदास गौड़ के लेख पढ़कर हमारी धारणा हिन्दी के प्रति बड़ी घृणित हुई है कि हिन्दी से अभी ये कुसंस्कार नहीं मिटे। हमें यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि पं० गौरी शंकर हीराचन्द सरीखे विद्वान् ओझा हैं।

भाइयो, ये सब ऐसी बातें हैं कि जिनका उत्तर हो ही नहीं सकता। इसके जिम्मेदार हिन्दी के लेखक और कवि ही हैं। उनके नाम और काम ही ऐसे हैं कि जिनसे भ्रम का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। साथ ही हिन्दी के परिचय ग्रन्थ ही ऐसे हैं कि उनसे भ्रम मिटाने के बदले और बढ़ता है। उदाहरण के लिये मिश्रबन्धु विनोद को ही ले लीजिए। इसमें एक ही लेखक के विषय में दो स्थलों पर दो तरह की बातें लिखी हुई हैं। कहीं लिखा है—ये महाशय पटना निवासी श्रीयुत 'क' के सुपुत्र थे। ये बड़े अच्छे ब्रजभाषा-मर्मज्ञ और कवि थे। सम्वत् १८३५ में गंगातट पर इनका अवसान हो गया। इनके लिखे 'कवित्त—कल्पद्रुम' और 'सवैया—शतक' अच्छे ग्रन्थ हैं! फिर इन्हीं लेखक के बारे में दूसरे भाग में, दूसरे स्थल पर यों लिखा है—"ये महाशय श्रीयुत 'क' के लड़के हैं। आज कल बी. ए. में पढ़ रहे हैं। इनके

बोली में इनकी कवितायें अच्छी होती हैं जो माधुरी में छपती हैं। ये बड़े होनहार मालूम होते हैं।

अब आप ही बताइये कि ऐसी दशा में भ्रम कैसे न फैले। मद्रास में एक बार 'हिन्दी प्रचार समिति' की ओर से "व्युत्पन्न" परीक्षा हो रही थी। मौखिक परीक्षा का परीक्षक मैं ही था। मुझे विद्यार्थियों के ऐसे अद्भुत उत्तर सुनने को मिले कि मैं दंग रह गया। मैंने छात्रों से पूछा—सर्व श्री काशीप्रसाद जायसवाल, जयशंकर प्रसाद, कामता प्रसाद गुरु, सम्पूर्णानन्द, दुलारे लाल भार्गव, राम कुमार वर्म्मा, प्रेमचन्द, सुमित्रानन्दन पन्त आदि के बारे में क्या जानते हो?

छात्रों के उत्तर इस प्रकार के थे—श्री काशी प्रसाद जायसवाल जायस नगर के रहने वाले थे। उन्होंने अपने पद्मावती चरित्र नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा भी है—जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आय कवि कीन्ह बखानू।" बाद में उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। तब वे काशी जाकर 'प्रसाद' जी के मकान के पास रहने लगे। इसी से उनका नाम काशीप्रसाद पड़ गया। पर जन्मभूमि के अखण्ड प्रेम के कारण उन्होंने अपनी 'जायसवाल' उपाधि का परित्याग नहीं किया।

प्रसाद जी बहुत वर्षों तक सत्यनारायण भगवान का प्रसाद खाकर तब पानी पीते थे, इसी से उनका नाम 'प्रसाद' जी पड़ गया। वे सब से मिलते समय बड़े प्रेम से 'जयशंकर' कहा करते थे। इसी से उनका नाम जयशंकर प्रसाद पड़ गया।

जिस विद्यार्थी ने पण्डित कामता प्रसाद गुरु का परिचय दिया, वह बड़ा मेधावी था और दैनिक 'आज' का नियमित पाठक था।

उसने कहा—पण्डित कामता प्रसाद गुरु हिन्दी के अच्छे समालोचक हैं। आप राय बहादुर बा० कामता प्रसाद कक्कड़ के गुरु हैं। इसी से आपका नाम शिष्य के ही नाम से पड़ गया है! आपने 'व्याकरण मीमांसा' नामक पद्यबद्ध ग्रन्थ लिखा है। वे 'सन्देश' बहुत खाते हैं। कुछ समय तक ये बिहार के मन्त्री बा० श्री कृष्ण सिंह के साथ 'श्री कृष्ण सन्देश' नामक मासिक पत्र भी निकालते थे। इस समय ये जबलपुर में वकालत करते हैं।

"स्वामी सम्पूर्णानन्द हास्यरस के अच्छे लेखक हैं। आजकल ये यू. पी. के शिक्षा मन्त्री हैं। पहले ये टेढ़ीनीम में तपस्या करते थे। वहीं नीम के पेड़ के नीचे इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्होंने उस ज्ञान को समाज को दान कर देना चाहा। आर्यसमाज में आपने वह ज्ञान देना चाहा। पर कुछ मतभेद होने से समाज को वह ज्ञान न देकर आपने 'समाजवाद' नामक शतक लिख डाला। शिमलामें अभी आप को पुरस्कार भी मिल चुका है। इन्हें यक्षिणी सिद्ध है।"

"श्री दुलारे लाल भार्गव महर्षि भृगु के वंश में उत्पन्न हुए हैं, ऐसा बहुतों का विश्वास है! कविता संसार में बिहारी के नीचे इन्हीं का स्थान रहेगा! हम उन्हें सिपाही की श्रेणी का कवि समझते हैं।

मैंने पूछा—सिपाही की श्रेणी कैसी जी !

"श्रेणी वगैरह मैं क्या जानूँ ! श्रेणी मिश्र बन्धु लोग बतला सकते हैं। आप लोग इन्हें सेनापति की श्रेणी का मानते हैं।"

अब मुझे ध्यान आया। छात्र ने कविकर सेनापति की भाँति किसी सिपाही कवि की भी कल्पना कर ली थी।

"रामकुमार जी 'वर्म्मा' निवासी हैं।" "प्रेमचन्द बा० धनपत राय के वंश में उत्पन्न हुए थे। ये वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे। वैद्यक में इनका 'कायाकल्प' नामक अच्छा ग्रन्थ है। सेवा सदन नामक इनका उपन्यास अच्छा है। इसके अन्दर इन्होंने महाकवि सूरदास का अच्छा चरित्र चित्रण किया है! ये उर्दू भी जानते थे। "सुमित्रानन्दन पन्त का पूरा नाम है—पण्डित लक्ष्मण प्रसाद ! सुमित्रानन्दन इनका कविता का उपनाम है। ये विरह की कविताएँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। इनको 'वीणा' बजाने का अच्छा अभ्यास है।"

सज्जनों ! इस प्रकार की धारणाएँ हिन्दी साहित्य के कलाकारों के बारे में मद्रास में फैली हुई हैं। फिर सुदूर पूर्व के देशों की क्या दशा होगी। रंगून में एक बार वहाँ की हिन्दी प्रचार सभा के अध्यक्ष ने मुझसे पूछा—कहिये प्रोफेसर साहब, दादा धालेलकर आज कल क्या कर रहे हैं ?" पहले तो मैं समझ ही नहीं सका, बाद में जब गौर किया तो मालूम हुआ कि उनका मतलब काका कालेलकर से था। अब आप ही बताइये कि जब हिन्दी के इतने बड़े प्रचारक काका कालेलकर को कोई मामा मालेलकर, नाना

नालेलकर या चाचा चालेलकर कहकर याद करें, तो औरों की क्या दशा होगी ?

सज्जनों ! इसलिए आप लोग इस प्रकार की भ्रान्तियों का निवारण करने के लिए कटिबद्ध हो जाइये। प्रत्येक लेखक और कवि की विशेषताओं का अध्ययन कीजिए और जनता को उन विशेषताओं से परिचित कराकर भ्रामक बातों का निराकरण कीजिए। मैंने स्वयं महाराष्ट्र होते हुए भी, हिन्दी कवियों की विशेषताओं का अध्ययन किया है। आपके उपकार के लिए मैं उनकी लिस्ट फिर कभी आपको दूँगा। दो एक की विशेषताएँ इसी समय बतला भी देता हूँ। प्रसाद जी दूकान पर नित्य शाम को बैठते थे। हरिऔध जी हर महीने मकान बदला करते हैं। आज इस मुहल्ले में तो कल दूसरे में। पराड़कर जी गर्मी में चना खाकर और जाड़े में आग तापकर सम्पादन करते हैं ! बा० रामचन्द्र वर्म्मा इन्स्पिरेशन के लिए रोज शाम को दशाश्वमेध की सीढ़ियों पर चक्कर लगाते हैं आदि ! सज्जनों आप भी इन्हीं "दृष्टिकोणों" से हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया करें।

मुख्तार साहब मुरई

मैं अपने 'कन्सल्टेशन रूम' में बैठा हुआ द्वार बन्द करके फौजदारी के एक गम्भीर मुकदमे के आवश्यक कागज पत्र देख रहा था। इतने में किसी ने कुण्डी खटखटायी। कुछ झुँझलाता हुआ मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

लोगों का बेमौके आना अखर जाता है। आप ने बाजार से चार पैसे की आधपाव जलेबी मँगायी। आप दिन भर के एकादशी-व्रत के बाद उसे उदरस्थ करने की तैयारी ही कर रहे हैं कि इतने में आपके मित्र पण्डित लटोलानाथ आ जाते हैं? बतलाइये उनका आना आपको अखरेगा या नहीं।

अस्तु मुकदमे के कागजात टेबुल के ऊपर पटकता हुआ मैं नीचे उतरा। सोचता था शायद मुहल्ले के होमियोपैथ डाक्टर घिरौक आते हैं। कारण उनसे अधिक बड़ा बेकार प्राणी मेरे ध्यान में दूसरा कोई न था। पर देखता क्या हूँ कि एक नाटा सा काला आदमी सिर पर मूलियों की एक टोकरी लिये हुए खड़ा है।

कुण्डी खटखटा कर मेरा समय नष्ट करने के कारण मुझे उसके

ऊपर बेतरह क्रोध आया। पर मैंने डाँटते हुए कहा—क्यों बे, क्या है ?

उसने खीस निपोरते हुए अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में कहा—मुख्तार साहब मुरई।

मूलियों की एक माला गूँथ रक्खी थी उसने। टोकरी की मूलियां ताजी थीं। पर उसकी भद्दी शक्ल और बेढंगी पोशाक पर मुझे क्रोध हो रहा था। इसके पूर्व कि मैं उससे दुबारा कुछ कहूँ, वह मुस्कुराते हुए बोला—क्यों मुख्तार साहब आपको मुरई पसन्द है ?

पता नहीं क्यों मैं मूली के नाम से चिढ़ता हूं। पर यह बात अभी बहुतों को नहीं मालूम थी। कहीं यह बात सब पर प्रकट हो गयी होती तो मुहल्ले के पाजी लड़के मुझे तंग कर डालते। पता नहीं इस कुंजड़े को मेरे इस स्वभाव का परिचय मिल चुका था या नहीं, हो सकता है किसी जानकार ने उसे सिखला कर भेजा हो, पर यह भी सम्भव है कि वह निर्दोष हो और केवल अपनी चीज बेचने के अभिप्राय से मेरे पास आया हो !

मैंने बात खतम करने के आशय से कहा—कतई नहीं, एकदम नहीं। तुम फौरन यहाँ से भाग जाओ।

वह बोला—बाबू जी, शक न कीजिए ! मुरई एक दम ताजी है। अभी २ तोड़ कर ला रहा हूँ। एक टुकड़ा चखकर देखिये न !

मैंने उसे डाँटा—बस, तुम अभी आँखों के सामने से दूर हट जाओ, मुझे किसी भी चीज की जरूरत नहीं है।

वह चला गया। मैंने द्वार बन्द कर लिए ! पर इसके पूर्व कि

मैं जीने पर चढ़कर ऊपर जाऊँ, वह फिर आ पहुँचा और बाहर से पुकार कर बोला—मुख्तार साहब, आप मुरई न खाते होंगे तो घर में तो मुरई खाती होंगी।

मैंने कहा—भागते हो कि पुलिस बुलाऊँ। मेरे यहाँ आज तक ऐसी स्त्री ही नहीं आयी जो मूली खाती हो।

वह फिर लौट गया। पर तुरंत घूमकर बोला—और हुजूर लड़के-बाले! वे भी मुरई नहीं खाते क्या?

मैंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया! गुस्से में भरकर, दरवाजा भिड़का मैं ऊपर चला आया।

एक सप्ताह बाद!

उसने मूली बेचना बन्द कर दिया था। सबेरे ही वह मेरे पास आया। गिड़गिड़ाकर बोला हुजूर मुझे कोई काम दें। मेरा खेत नीलाम हो गया। हाल रोजगार कोई नहीं रहा! अब यदि आप अपने यहाँ कोई काम न देंगे तो पेट का भरण पोषण कैसे होगा!"

मैं बोला—काम करेगा! मेरे पास तो कोई खास काम नहीं है। हाँ हमारे बाग का माली बहुत बुड्ढा हो गया है और वह दो महीने की छुट्टी भी चाहता है। तुम चाहो तो उसकी जगह काम कर सकते हो। दो महीने बाद काम अच्छा होने पर तुम मुस्तकिल भी किये जा सकते हो!

उसने प्रसन्नता से मेरे पैर पकड़ लिये। बोला—हुजूर आप जो जावें। मैं बड़ी योग्यता से माली का काम करूँगा।

और वह उस दिन से माली का काम करने लगा। माघ मेला का समय था। श्रीमती जी ने कहा—चलते नहीं, प्रयाग स्नान कर आवें। विमला भी अपने पति के साथ आने वाली है।

मैंने कहा—विमला के पति की चर्चा न करो! हाँ यदि तुम चाहो तो मैं चला चलूँ।"

और यही हुआ। यद्यपि मैं मेला तमाशा का सदैव से विरोधी रहा हूँ, पर श्रीमती जी को लेकर प्रयाग के लिए रवाना हो गया। विचार तो वहाँ केवल तीन दिन रुकने का था, पर बचपन के एक पुराने साथी मिस्टर सन्तोष कुमार से भेंट हो गयी। वे उन दिनों प्रयाग हाईकोर्ट में ही वकालत करते थे। संयोगवशात् उनकी पत्नी मेरी श्रीमती जी की सहपाठिनी निकल पड़ीं।

अब क्या था! पूरे तीन सप्ताह अर्थात् इक्कीस दिन हम लोग प्रयाग में पड़े रहे!

२२ वें दिन सन्ध्या समय हम लोग घर लौटे। बगीचे की ओर गया तो क्या देखता हूँ कि गुलाब के पौधों का पता नहीं। उनके स्थान पर कुछ और ही पौधे हैं! हरी देखकर मैं चौंक पड़ा। मैंने पूछा—क्यों माली! यह सब क्या है! वह दाँत निकाल कर हँसते हुए बोला—

"मुख्तार साहब मुरई!"

मैं स्तब्ध रह गया। समझ में नहीं आया कि उसकी इस शैतानी पर उसे मारूँ या शाबसी दूँ, रोऊँ या हँसूँ।

'भाषण-स्वातन्त्र्य'

मैंने म्युनिसपल बोर्ड के मानपत्र के उत्तर में कहना शुरू किया। मेरे खड़े होते ही तालियों की गड़गड़ाहट ने मेरा स्वागत किया। मैं बोला—चेयरमैन महोदय ! हाँ हाँ चेयरमैन शब्द हिन्दी का निजी धन हो गया है। यह हिन्दुस्तानी का अच्छा नमूना है !—और, और सदस्यगण अथवा मेम्बर महाशयों ! कोई हर्ज नहीं ! मेम्बर शब्द भी प्रचलित हो गया है ! आप जानते हैं और जानती हैं—भई मेम्बर तो कामन जेण्डर का शब्द है और फिर आप में अब की मेम्बर भी अनेक हैं। हाँ तो आपने अभी २ अपने मानपत्र में कुछ कहा है। क्या कहा है ! हाँ आप की तनख्वाह कम है ! आप पैसे चाहते हैं। आप की मजदूरी बढ़ा दी जाय ! और नहीं तो, आप हड़ताल करेंगे ! क्यों यही न ! इसलिए इसका यह मतलब हुआ कि आप धमकी दे रहे हैं। आप चाहते हैं कि आपको बोलने की आजादी दी जाय ! पर मैं

आपको आजादी न दूँगा। हर्गिज न दूँगा ! अरे न दूँगा साहब !

आपको क्या पता कि संसार में ऐसी अनेक बातें हैं, जिन्हें आप जानते हैं, फिर भी नहीं कह सकते। अनेक बातें ऐसी हैं जिन्हें आप कहना चाहते हैं, पर कहने में आप असमर्थ हो जाते हैं। अनेक बातें कहने में आप अपना अपमान समझते हैं।

मान लीजिए आपके कोई मित्र महोदय आपके ठीक जलपान करने के समय आपके पास पहुँच जाते हैं। आप चाहते हैं कि वे न आया करें, पर बोलने की आज़ादी होते हुए भी आप यह नहीं कह सकते कि 'आप इस समय न आया कीजिए।'

आपके कोई मित्र कवि हैं। वे जबर्दस्ती आपको छन्द के बाद छन्द सुनाये जाते हैं। और आपसे उसकी बारीकियाँ बतला कर उसकी प्रशंसा भी करते जा रहे हैं। आपकी इच्छा होती है कि कह दें—"तुम परम लण्ठ हो। तुम्हारी कविता नितान्त अर्थ-शून्य है। इसमें कोई काफिया ठीक नहीं।" पर आप लाचार हैं। आप ऐसा नहीं कह सकते। 'भलमनसाहत' नामक आर्डिनेन्स आपकी जबान पर लगा हुआ है।

आप गृहस्थ हैं। पत्नी आपसे पटती नहीं है। वे ही आपको दबाये रहती हैं। कल रात घर में रसोई नहीं बनी। आप आज दिन भर भी उपासे रह गये। पर इस बात को आप किसी से नहीं कह सकते।

आप अध्यापक हैं। क्लास में पढ़ा रहे हैं। श्रीमती जी का पत्र अभी डाक से आया है। चपरासी आपको दे गया है। आपने

पढ़ा, पत्नीजी ने एक स्वेटर बुना है, जिसे वे कल पार्सल से भेजेंगीं। आपके चेहरे पर मुस्कराहट खेल जाती है। कोई शरारती लड़का पूछ बैठता है—मास्टर साहब! कहाँ का पत्र है?" क्या आप ठीक उत्तर दे सकते हैं। इसका उत्तर शायद आप यही देंगे—"चलो पचीसवाँ थ्योरम ब्लैक-बोर्ड पर समझाओ।"

आपका कोई मित्र आपके घर आता है। वह पूछता है—कल मैं फिर कब आपके घर आऊँ?" आप कह देते हैं—"अजी साहब घर आपका है, जब इच्छा हो पधारिए!"—आप जानते हैं कि घर न उनका है न उनके बाप का। उसे आपने ही अपनी बाप से वसीयतनामें में पाया है, तथापि सभ्यता के नाते आप कहते हैं—घर आपका है?

आप बच्चों के साथ चौक से टहल कर आ रहे हैं। कोई साथी मिल जाता है। वह पूछता है—

"बच्चे किसके हैं?" आप रटी हुई स्पीच की तरह कह जाते हैं—आपही के हैं। यद्यपि यह बात नैतिकता और सचाई के एक-दम विरुद्ध है, फिर भी आप सौजन्यवश यह कह ही जाते हैं। किन्तु!

आपकी पत्नी सिनेमा देखकर रात ११ बजे घर लौट रही थीं। ताँगे वाला शराब पिये हुए था। ताँगा उलट गया। आपकी पत्नी को चोट आयी। थाने तक जाना पड़ा! उनका मनीबैग (जिसमें १५०) के नोट थे राह में ही गिर पड़ा। वे डर के मारे तथा चोट से बेहोश होगयीं। उन्हें लिखवाने थाने तक जाना पड़ा।

ताँगेवाले का चलान हुआ। आप थाने पर बुलाए गये। थानेदार आपसे पूछता है—महाशय यह आपकी पत्नी हैं ?

आप तपाक से कहते—जी हाँ !"

पहिले की तरह आप नहीं कहते—"आपही की हैं।" क्या आप ऐसा कह सकते हैं ?

आप अपने किसी मित्र को श्रीमान् रामस्वरूप कह कर पुकारते हैं ! पूरे नाम के बदले में आप उन्हें केवल श्रीमान् जी भी कह सकते हैं। आपके पड़ोस में कोई कवयित्री हैं—श्रीमती मीनाक्षी। आप उन्हें श्रीमती मीनाक्षी जी कहते हैं। पर क्या आप उन्हें केवल श्रमती जी, कह सकते हैं ? बोलिए !

कोई आपसे पूछे—कहिये आपने अपनी बीबी को पीटना बन्द कर दिया ?" आप क्या उत्तर देंगे ! "हाँ" ? तो इसके माने यह हुआ कि पहिले आप पीटते थे। "नहीं" ! तो इसके माने यह हुए कि अभी भी आप पीटते हैं, यद्यपि आप ने भले ही उसे सदा से अपना उपास्य देवता मान रक्खा हो ! अब आप ही बताइये कि आपकी Freedom of speech या बोलने की आजादी कहाँ गयी।

इसीलिये भाइयो ! बोलने की आजादी वाली माँग पेश न करो।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

श्रीयुत् 'आवारा' लिखित

४) पगडंडी — ३॥) धड़कन
४) अँगड़ाई — ३॥) मुमताज
३॥।) खँडहर — ३) पीली कोठी
३॥) पायल — ६) सोलह [illegible] ?,
३) सूखे पत्ते — ३) अनार कली
२।) मंदिर की नर्तकी

आचार्य चतुरसेन लिखित

४॥) आत्मदाह — २) नरमेघ
२) नीलमणि — ३॥) दो किनारे

श्री गोविन्द सिंह लिखित

२॥) पपीहा बोले आधी रात — २॥) चौरंगी
२॥) सहारा — २॥) साँवरिया
२॥) काली घटा — २॥) आशियाना
२॥) तारों भरी रात — ३) ललकार

हास्यरस

२॥ महाकवि साँड़ — २।) पानी पांड़े
२।) बेचारे मुंशीजी — १॥) मेरे राम का फैसला
१॥) मिस्टर तिवारी का टेलीफोन

शतप्र-तिशत अन्य रोचक उपन्यास

२॥) त्याग — १॥।) रोटी